Cat no. 25385
14-4 14/1/71/12

छात्रहितकारी पुस्तकमाला-संख्या ५

ब्रह्मचर्य ही जीवन है

[BRAHMACHARYA IS LIFE]

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत"
—वेद

स्वामी शिवानन्द

ब्रह्मचर्य ही जीवन है

आदर्श बालब्रह्मचारी नरकेशरी
प्रोफ़ेसर माणिकराव बड़ोदा

समर्पण-पत्र

एकोऽहं असहायोऽहं कृशोऽहं अपरिच्छदः
स्वप्नेप्येवंविधा चिन्ता मृगेन्द्रस्य न जायते ॥१॥

परम सन्माननीय व श्रद्धास्पद योग्य, मल्ल तथा शस्त्रविद्या-
विशारद, सिंहतुल्य अत्यन्त निर्भय, शूर व बलवान
परम तेजस्वी, ओजस्वी, यशस्वी पूर्ण
सदाचारी, अतीव देशहितकारी महत्
परोपकारी कर्मवीर, निस्सीम नम्र,
आदर्श बालब्रह्मचारी,

प्रोफ़ेसर माणिकरावजी

के परम पवित्र, कठोर, अखण्ड व दिव्य ब्रह्मचर्य
व्रत को व तपस्या को वामन कृति
सप्रेम व सादर समर्पित।

भवदीय नम्र बन्धु

शिवानन्द

ॐ

सम्पादकीय वक्तव्य

—:o:—

(प्रथम संस्करण से)

प्रिय पाठकवृन्द,

"ब्रह्मचर्य्य ही जीवन है और वीर्यनाश ही 'मृत्यु है'" यह सारगर्भित और महत्वपूर्ण सिद्धान्त अक्षरशः सत्य है। देश में ब्रह्मचर्य का कितना पतन हुआ है यह हम और आप सभी जानते हैं। विद्यार्थियों के साथ २४ घन्टे रहने के कारण हमें अच्छी तरह ज्ञात है कि वीर्यनाश के कैसे कैसे विचित्र विचित्र कृत्रिम उपाय निकाले गये हैं, जिनके स्मरण मात्र से शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। बीस बीस, पचीस पचीस वर्ष के नवयुवकों के कपोल चिपके हुये हैं और ये इस तरुण अवस्था ही में बूढ़े दिखलाई पड़ते हैं। इसमें इन नवजवानों का भी दोष नहीं है। दोष है शिक्षकों और विशेषकर आप लोगों का, जो उनके माता पिता होने का दम भरते हैं। अधिकतर शिक्षक पाठशालाओं में केवल इतिहास, भूगोल गणित और अंग्रेज़ी आदि विषय पढ़ाना और उन्हें घुटवाना ही अपना मुख्य ध्येय समझते हैं, ब्रह्मचर्य विषय पर किसी प्रकार की चर्चा करना नापसन्द करते हैं। लड़के गाली बकते हैं, व्यभिचार करते हैं और आप (उनके माता-पिता) ऐसी ऐसी गम्भीर और ध्यान देने योग्य बातों को यों ही टाल देते हैं।

हमारी इच्छा है यह पुस्तक आप पढ़ें और यदि आपका पुत्र सबोध है, तो उसके हाथ में यह दिव्य-पुस्तक रक्खें और उससे इसी पुस्तक के नियमों के आधार पर अपना चरित्र ढालने का अनुरोध करें। आप का बच्चा निस्सन्देह तेजस्वी होगा, नीरोग होगा, साहसी होगा, दीर्घजीवी होगा और सच्चा देश-भक्त निकलेगा।

यह ग्रन्थ पूर्ण मौलिक है। इसके लेखक स्वामी शिवानन्द नाम के एक युवा गृहस्थ संन्यासी हैं। लगभग ७ वर्ष पूर्व हमारा और आपका परिचय पहले पहल मिर्ज़ापुर में हुआ था। मिर्ज़ापुर में आप करीब ३ वर्ष रहे। पाठशाला से जब हमें सावकाश मिलता था, तो प्रायः हम आपके पास जाया करते थे। आप की आयु इस समय (सन् १६२२) में २३ वर्ष की है और यद्यपि आपका विवाह हो गया है किन्तु आप पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं※।

स्वामी जी के विचार, स्वामी जी का रूप और स्वामी की दिन-चर्या इत्यादि को देखकर आपके प्रति हमारे हृदय में बड़ी श्रद्धा उत्पन्न हुई। सौभाग्यवश आपकी भी हमारे ऊपर बड़ी कृपा हुई। अन्यान्य प्रसन्नता से हमारा और स्वामी का सम्बन्ध और भी प्रगाढ़ हो गया और हमारे जीवन में आपके सत्सङ्ग से बहुत परिवर्तन हुआ।

आपको मालूम था कि, हम एक ग्रन्थमाला के सम्पादक भी हैं; अतएव आपने हमारे ऊपर बड़ी कृपा करके 'ब्रह्मचर्य' विषय पर एक उत्तम ग्रंथ लिख कर देने का बचन दिया और यह वचन शीघ्र पूरा भी किया गया। यद्यपि यह ग्रन्थ हमारे पास करीब एक वर्ष से लिखा रखा था किन्तु धनाभाव और पाठशाला सम्बन्धी कार्यबाहुल्य के कारण हम इसे शीघ्र प्रकाशित न कर सके; इसके लिये हम आप लोगों से और स्वामी जी से क्षमा माँगते हैं।

※अब स्वामी जी की धर्मपत्नी का ता० २९ फरवरी १९२६ शुक्रवार के दिन 'स्वर्गवास' हुआ है। आप बड़ी ही सत्यशीला सती देवी थीं। आप पतिव्रता स्त्रियों में मूर्तिमान आदर्श थीं। मृत्यु के समय माताजी की आयु केवल २५ वर्ष की थी। हमने 'माताजी' को प्रत्यक्ष देखा था, इस कारण विशेषतः हमें यह अशुभ समाचार सुनकर बहुत ही दुःख हुआ है। परमात्मा इस सती की आत्मा को पूर्ण शांति और स्वामीजी को पूर्ण धैर्य प्रदान करे। —सम्पादक

इस ग्रंथ को स्वामी जी ने बहुत से ग्रंथों का ध्यानपूर्वक अध्ययन करके लिखा है और उनमें अपने अनुभव का भी पूर्ण समावेश किया है। इस कारण यह ग्रंथ बड़े ही महत्त्व का हुआ है। इस ग्रंथ को पढ़ने और उसके अनुसार चलने से पतित से पतित मनुष्य का भी जीवन प्रवाह अवश्य बदल सकता है, इसमें कुछ भी शङ्का नहीं।

हमारी आप से अन्त में यही प्रार्थना है कि आप स्वामी जी के लिखे हुये इस अनुपम ग्रंथ को पढ़ें, मनन करें, स्वयं नियमों का पालन करें और अपने बाल बच्चों से भी पालन करावें। यदि हमें प्रोत्साहन मिला कि आप लोगों ने इस ग्रंथों को अपनाया है, तो हम अपने को धन्य मानेंगे और दूसरे संस्करण में ग्रन्थ को बढ़ाने का प्रयत्न करेंगे।

दारागंज हाई स्कूल, प्रयाग
जेष्ठ दशमी १९७९

—केदारनाथ गुप्त

विषयानुक्रमणिका

विषय				पृष्ठांक
लेखक की भूमिका	...	...	...	१
१—ब्रह्मचर्य्य की महिमा		...	...	५
२—अष्ट-मैथुन	...	...	...	७
३—हस्तमैथुन और उसके दुष्परिणाम		...	...	८
(अ) वीर्य्यनाश के मुख्य लक्षण		...	...	१३
४—माता और पिताओं का कर्तव्य		...	...	१७
५—वैद्य व डाक्टर	...	...	...	१९
६—ब्रह्मचर्य्य व आरोग्य		...	...	२१
७—ब्रह्मचर्य्य के विषय में प्रमाद		...	...	२४
८—ब्रह्मचर्य्य व आश्रम चतुष्टय		...	...	२७
९—ब्रह्मचर्य्य और विद्यार्थी		...	...	२९
१०—काम का दमन	...	...	...	३१
११—प्रकृति का स्वभाव	...	...	...	३८
१२—मन व इन्द्रियां	...	...	...	४३
१३—वीर्य की उत्पत्ति	...	...	...	४४
१४—गृहस्थी में ब्रह्मचर्य्य		...	...	५०
१५—बाल विवाह	...	...	...	५४
१६—वीर्य्य का प्रचण्ड प्रताप		...	...	५८
१७—अज्ञान का फल मृत्यु है		...	...	६५
१८—वीर्य्यरक्षा के अनूठे नियम		...	...	६८
१—पवित्र संकल्प	...	...	...	७३
२—पवित्र मातृभाव दृष्टि		...	...	७६
३—सादी रहन सहन		...	...	८२
४—संतसङ्गति	...	...	...	८४

विषय			पृष्ठांक
५—सद्ग्रन्थावलोकन	..	...	८८
६—घर्षण स्नान ...	...	...	९०
७ -सादा व ताज़ा अल्पाहार	...	...	९६
८—निर्व्यसनता ...	...	...	११९
९—दो बार मलमूत्र त्याग	...	...	१२०
१०—इन्द्रिय स्नान ...	...	...	१२२
११—नियमित व्यायाम	...	...	१२४
१२—जल्दी सोना व जल्दी जागना ...		...	१३१
१३—योगासनाभ्यास ...	...	...	१३६
१४—प्राणायाम ...	...	...	१४८
१५—उपवास ...	...	...	१५१
१६—दृढ़प्रतिज्ञा ..	...	...	१५३
१७—डायरी ...	...	...	१५६
१८—सततोद्योग ...	...	...	१५८
१९—स्वधर्मानुष्ठान ...	...	...	१५९
२०—नियमितता ...	...	...	१६१
२१—लंगोटबन्द रहना ...	...	...	१६३
२२—खड़ाऊँ ...	...	...	१६३
२३—पैदल चलना ...	...	...	१६४
२४—लोकनिन्दा का भय	...	...	१६५
२५—ईश्वर-भक्ति ...	...	...	१६७
१९—नित्य नियमावली का पाठ	...	...	१७०
२०—सम्पूर्ण सुधारों का दादा ब्रह्मचर्य ...		...	१७०
२०—हमारी भारत-माता ...	...	...	१७३

भूमिका

प्रथम संस्करण से

"मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम्॥१॥

इस छोटे से ग्रन्थ में सर्वत्र स्वानुभाव-प्रकाश और साथ ही साथ शास्त्र व परानुभव-प्रकाश भी किया है। इसमें अनुभव की बातें कूट कूट कर भरी होने के कारण यह ग्रन्थ और भी महत्व का हुआ है। इसका मुख्य विषय "Chastity is Life and Sensuality is Death" यानी "ब्रह्मचर्य ही जीवन है और वीर्यनाश ही मृत्यु है" यह है। जब शरीर में से चैतन्य निकल जाता है तब उसके साथ ही साथ रक्त और वीर्य, ये दो जीवन-प्रद तत्व भी मृत्यु के बाद शीघ्र ही ग़ायब हो जाते हैं और उनका पानी बन जाता है। जिस मनुष्य को हैज़ा होता है उसके रक्त का पानी बनने लग जाता है और वही पानी फिर क़ै और दस्त के द्वारा बाहर निकलने लगता है। कोई अंग कटने पर भी उसके शरीर से खून नहीं निकलता; पश्चात् वह बहुत जल्द मृत्यु को प्राप्त होता है। अतः यह सिद्ध है कि "जब तक मनुष्य के शरीर में रक्त व वीर्य दो चीज़ें मौजूद हैं, तभी तक वह जीवित रह सकता है और इनका नाश होने से उसका भी तत्काल नाश हो जाता है। जितना मनुष्य वीर्य्य का नाश करता है उतना ही वह रक्तविहीन बन कर मृत्यु की ओर बराबर झुकता जाता है। जितना अधिक मनुष्य वीर्य को धारण करता है उतना ही अधिक वह सजीव बनता जाता

है; उसमें शक्ति, तेज निश्चय, सामर्थ्य, पुरुषार्थ बुद्धि, सिद्धि और ईश्वरत्व प्रगट होने लगते हैं और वह दीर्घकाल पर्यन्त जीवनलाभ कर सकता है। वीर्यहीन पुरुष को कोई भी तार नहीं सकता और वीर्यवान पुरुष को कोई भी (रोग) अकाल में मार नहीं सकता ! दुर्बल को ही सब रोग सताते हैं। "दैवो दुर्बलघातकः" यही प्रकृति का नियम है। सच पूछिये तो "वीर्य्य ही अमृत* है।" इसी की रक्षा करने से अर्थात् धारण करने से मनुष्य अजर अमर होता है। भीष्म पितामह इसी संजीवनी शक्ति के कारण अमर (यानी अकाल में मृत्यु न पाने वाले) और इतने सामर्थ्य-संपन्न हुए थे। यदि हम भी इसकी रत्ता करें अर्थात् वीर्य रोक कर ब्रह्मचर्य धारण करेंगे तो हम भी वैसे ही प्रभावशाली और उन्नतिशील बन सकते हैं। क्योंकि वीर्य रत्ता ही आत्मोद्धार का रहस्य है और इसी में जीवमात्र का जीवन है।

इस ग्रन्थ में वीर्यरत्ता सम्बन्धी जो अनूठे और स्वानुभूत नियम बतलाये गये हैं वे बहुत ही अनमोल हैं ! स्वतः अनुभव किये होने के कारण वे अत्यन्त ही सिद्ध हैं—रामबाण हैं—कभी भी निष्फल होने वाले नहीं हैं। केवल नियम ही भर पढ़ लेने से मनुष्य वीर्यरक्षा करने में निःसन्देह समर्थ हो सकता है, परन्तु यदि वह इस ग्रन्थ को "आद्योपान्त" पढ़ लेगा तो वह उन नियमों का मर्म भली भांति समझ जायगा और उनमें वीर्य रत्ता के लिये एक अद्भुत जोश पैदा होगा, जिससे वह उन्नति अवश्य करेगा। आप स्वयं अनुभव करके देख लीजिये।

क्या तुम जीवित रहना चाहते हो, तब फिर तुम्हें अवश्य ही वीर्य के नाश से बचना होगा और इस ग्रन्थ में दिये हुये नियमों के अनुसार

---

*शास्त्र में अमृत का रूप 'शुभ्र' वर्णन किया है।

मन, क्रम, बचन से चलना होगा। जो मनुष्य इन नियमों के अनुसार केवल दो ही साल तक चलेगा उसका जीवन प्रवाह बिल्कुल ही बदल जायगा, शरीर और मन में अद्भुत परिवर्त्तन होगा, पापात्मा भी निःसंशय पुण्यात्मा बन जायगा! व्यभिचारी भी ब्रह्मचारी बन जायगा !! और दुर्बल भी सिंह तथा दुरात्मा भी साधु महात्मा बन सकेगा !!!

पर हां, नियमों को किसी कारण तोड़ना न होगा! उन्हें दृढ़ता के साथ निबाहना होगा। यदि कोई जीवन-पर्यन्त इन नियमों के अनुसार चले तो फिर कहना ही क्या है! वह इस मृत्युलोक में ही देवता के तुल्य पूजनीय बन जायगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

इस ग्रन्थ में दिये हुए ब्रह्मचर्य-पालन के नियम अत्यन्त ही सरल व सुलभ हैं। उनमें एक कौड़ी का भी खर्च नहीं है। जैसे हम पालन कर रहे हैं वैसे आप भी पालन कर सकते हैं। यदि दिल से निश्चय करलो तो क्या नहीं हो सकता? "Resolution is victory" अर्थात् निश्चय ही बल है और निश्चय ही फल है!

प्रत्येक मनुष्य में ईश्वरीय शक्ति वास कर रही है। दया, क्षमा, शान्ति, परोपकार, भक्ति, प्रेम, वीरता, स्वतंत्रता, सत्य और कुकर्म से अरुचि इन सब के अंकुर हृदय में रक्खे हुए हैं, चाहे उन्हें सींच कर बढ़ाओ चाहें सुखा दो।

परमात्मा सब को सुबुद्धि प्रदान करे और उनका उद्धार करे!

सब का नम्र बन्धु—
शिवानन्द

ॐ! ॐ!! ॐ!!!

ब्रह्मचर्य ही जीवन है

श्रीमत् स्वामी शिवानन्द महाराज,
आश्रम–वरूड़, (जि० अमरावती)
P. O.-WARUD. (Dist. Amraoti)

ॐ तत्सत्

ब्रह्मचर्य ही जीवन है

१—ब्रह्मचर्य की महिमा

न तपस्तप इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम् ।
ऊर्ध्वरेता भवेद् यस्तु स देवो नतु मानुषः ॥ १॥

भगवान् कैलासपति शंकर कहते हैं:—"ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्य धारण यही उत्कृष्ट तप है। इससे बढ़कर तपश्चर्या तीनों लोकों में दूसरी कोई भी नहीं हो सकती। उर्ध्वरेता पुरुष अर्थात् अखण्ड-वीर्य का धारण करने वाला पुरुष इस लोक में मनुष्य रूप में प्रत्यक्ष देवता ही है।"

अहा हा! क्या ही महान् इस ब्रह्मचर्य की महिमा है। परन्तु आज हम इस मानवता को भूलकर नीचता की धूलि में दास्यभाव से विचरण कर रहे हैं। कहाँ हमारे वीर्यवान, सामर्थ्य-संपन्न पूर्वज और कहाँ हम उनकी निर्वीय और पद-दलित दुर्बल सन्तान! ओफ! कितना यह आकाश पाताल का अन्तर हो गया है! हमारा कितना भयंकर पतन हुआ है? इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि हमारा यह जो भीषण पतन हुआ है इसका मुख्य कारण एकमात्र

हमारे "ब्रह्मचर्य का ह्रास" ही है। ब्रह्मचर्य के नाश से ही हमारा सम्पूर्ण सत्यानाश हो गया है। हमारा सुख, आरोग्य, तेज, विद्या, बल, सामर्थ्य, स्वातन्त्र्य और धर्म सम्पूर्ण हमारे ब्रह्मचर्य के ऊपर ही सर्वथा निर्भर हैं। ब्रह्मचर्य ही हमारे आरोग्य-मन्दिर का एक मात्र आधारस्तम्भ है। आधारस्तम्भ के टूटने से जैसे सम्पूर्ण भवन ढह जाता है, वैसे ही वीर्यनाश होने से सम्पूर्ण शरीर का भी नाश अति शीघ्र हो जाता है। जैसे जैसे हमारे ब्रह्मचर्य का नाश हो जाता है, वैसे वैसे हमारे स्वास्थ्य का भी नाश हो जाता है। "मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दु धारणात" यह भगवान् शंकर का अमिट सिद्धान्त है। वीर्य को नष्ट करने वाला पुरुष कभी बच नहीं सकता और वीर्य को धारण करने वाला कभी अकाल में मर नहीं सकता। तत्वतः व वस्तुतः ब्रह्मचर्य ही जीवन है और वीर्यनाश ही मृत्यु है। ब्रह्मचर्य ही के अभाव से हम किसी अवस्था में सुखी और उन्नत नहीं हो सकते। ब्रह्मचर्य ही हमारे इस लोक व परलोक के सुख का एक मात्र आधार है। यही नहीं किन्तु ब्रह्मचर्य ही हमारे चारों पुरुषार्थों का मूल है—मुक्ति का प्रदाता है। वीर्य अत्यन्त अनमोल वस्तु है। इसी वीर्य के बल पर मनुष्य देवता बनता है और उसके नाश से यह पूर्ण पतित बन जाता है। बिना ब्रह्म-चर्य धारण किये हुए कोई भी पुरुष कदापि श्रेष्ठ पद को प्राप्त नहीं कर सकता। वीर्य-भ्रष्ट पुरुष कदापि पवित्रात्मा, धर्मात्मा व महात्मा नहीं हो सकता। विना ब्रह्मचर्य के प्रत्यक्ष इन्द्र भी तुच्छ और पददलित हो सकता है। तब फिर सामान्य मनुष्यों की बात ही क्या है? अतः ब्रह्मचर्य ही, हमारी सम्पूर्ण विद्या, वैभव और सौभाग्य का आदि कारण है! ब्रह्मचर्य ही हमारी

श्रेष्ठता, स्वतंत्रता और सम्पूर्ण उन्नति का बीज मन्त्र है !!! ब्रह्मचर्य ही हमारी सम्पूर्ण सिद्धियों का एक मात्र रहस्य है !!!

२—अष्ट मैथुन

"स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणं ।
संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रिया निष्पत्तिरेवच ।"
एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विपरीतं ब्रह्मचर्यं एतत् एवाष्टलक्षणम् ॥१॥

शास्त्र में ब्रह्मचर्य-नाश के आठ मैथुन बतलाये हैं;—(१) किसी जगह पढ़े हुए, सुने हुए या चित्र में व प्रत्यक्ष देखे हुए स्त्री का ध्यान, चिन्तन व स्मरण करना। (२) स्त्रियों के रूप, गुण और अंग प्रत्यङ्ग का वर्णन करना—शृङ्गारिक गायन व कजली गाना अथवा भद्दी बातें बकना (३) स्त्रियों के साथ गेंद, ताश, शतरंज, होली इत्यादि खेल खेलना। (४) किसी स्त्री की ओर गीध या ऊँट की तरह गर्दन उठाकर या घुमा कर पाप-दृष्टि से अथवा चोर-दृष्टि से देखना। (५) स्त्रियों में बार बार आना जाना और उसके साथ एकान्त में बातचीत करना। (६) शृङ्गार रस-पूर्ण वाहियात उपन्यास पढ़कर किंवा स्त्रियों के भद्दे फोटो देखकर अथवा नाटक वा सिनेमा के रद्दी कामचेष्टापूर्ण दृश्य देखकर उन्हीं की कल्पनाओं में निमग्न रहना। (७) किसी अ-प्राप्य स्त्री की प्राप्ति के लिये व्यर्थ पापपूर्ण प्रयत्न करना। और (८) प्रत्यक्ष संभोग ये ही अष्ट मैथुन हैं। इन लक्षणों के बिलकुल विरुद्ध लक्षण अखंड ब्रह्मचर्य के होते हैं। आदर्श ब्रह्मचर्य मे इनमें का एक भी लक्षण वा मैथुन नहीं आना चाहिये। क्योंकि इनमें का कोई भी मैथुन किंवा लक्षण मनुष्य को नष्ट-भ्रष्ट करने में पूर्ण समर्थ है।

३—हस्तमैथुन और उसके दुष्परिणाम

आजकल समाज में उपर्युक्त अष्ट मैथुनों के अलावा और भी एक मैथुन नवयुयकों में बड़े भीषणरूप से फैल गया है। इस मैथुन से तो बालकों का बड़ा ही भारी संहार हो रहा है; प्लेग और इन्फ्लुएञ्जा से कहीं बढ़कर यह नया रोग नवयुवकों को जान से मार रहा है। यही नहीं, बल्कि बड़े-बड़े लिखे-पढ़े हुये लोग भी इस काल के कराल पंजे में 'मोहवश' जा रहे हैं। हा! यह बड़े ही दुर्भाग्य की बात है। इस महारोग से पिण्ड छुड़ाना प्लेग, इन्फ्लुएञ्जा से भी महा कठिन हो गया है। इस महारोग को "हस्तमैथुन"* का रोग कहते हैं। यह रोग बड़ा ही भयानक है! यह राक्षस मनुष्य को बड़ी क्रूरता से बिलकुल निचोड़ डालता है। यह भी एक प्रकार की स्त्री की नवविधा भक्ति ही है। फर्क इतना ही है कि परमात्मा की नवविधा भक्ति से मनुष्य की मुक्ति होती है और स्त्री की किंवा विषय की इस नवविधा भक्ति से मनुष्य को नरक की प्राप्ति होती है।

हस्तमैथुन के कारण जितनी हानियाँ उठानी पड़ती हैं यदि केवल उनके नाम ही लिखे जायं तो एक छोटी सी पुस्तिका तैयार हो सकती है। हम यहाँ पर इस नष्टकारी कुटेव का संक्षेप में ही वर्णन करते हैं। किसी लकड़ी को घुन लगने से जैसे वह बिलकुल खोखली पड़ जाती है वैसे ही इस अधम कुटेव से मनुष्य की अवस्था जर्जरीभूत हो जाती है।

* पापी मनुष्यों ने वीर्यनाश के बीसों तरीके निकालें हैं। वे सब ही अप्राकृतिक व महानिंद्य हैं। अतः उन सब को हमने "हस्तमैथुन" में समाविष्ट किये हैं।

हस्तमैथुन को अङ्गरेज़ी में (Masturbation) मास्टरवेशन कहते हैं। कोई इसे मुष्टमैथुन, हस्त-क्रिया अथवा आत्म-मैथुन भी कहते हैं। हस्तमैथुन से इन्द्री की सब नसें ढील पड़ जाती हैं। फल यह होता है कि स्नायुओं के दुर्वल होने से जननेन्द्रिय टेढ़ा, लघु व ढीला पड़ जाता है। मुख की ओर मोटा और जड़ की ओर पतला पड़ जाता है, इन्द्री पर एक नस होती है वह उभर आती है और मुंह के पास वाईं ओर कंटियाँ की तरह टेढ़ी वन जाती है। यह नितान्त नपुंसकता का चिन्ह है। ऐसे एक बालक को हमने स्वयं देखा है। नस-दौर्वल्य से वार वार स्वप्न-दोष होने लगता है। सामान्य कामसंकल्प से ही अथवा शृङ्गारिक वर्णन, गायन के दृश्य मात्र से ही ऐसे पतित पुरुष का वीर्य नष्ट होने लगता है। उसका वीर्य पानी की तरह इतना पतला पड़ जाता है कि स्वप्न-दोष के वाद वस्त्र पर उसका चिन्ह तक नहीं दिखाई देता। इन्द्री में वीर्यधारण करने की शक्ति नहीं रह जाती। ऐसा पुरुष स्त्री-समागम के सर्वथा अयोग्य वन जाता है।

शरीर के भीतर 'मनोवहा' नामक एक नाड़ी है। इस नाड़ी के साथ शरीर की सम्पूर्ण नाड़ियों का सम्वन्ध है। काम-भाव जागृत होते ही ये सव नाड़ियां कांप उठती हैं और शरीर के पैर से सिर तक के सब यंत्र हिल जाते हैं, फिर रक्त का व सम्पूर्ण शरीर का मथन होकर वीर्य उनसे भिन्न होकर नष्ट होने लगता है जिससे धातु-दौर्वल्य, प्रमेह, स्वप्न-मेह, मधुमेहादि कठिन रोग शरीर में घर कर लेते हैं।

शरीर के खून में एक सफेद (White corpuscle) और दूसरे लाल (Read corpuscle) कीट होते हैं। सफेद कीटों

में रोगों के कीटों से लड़ने की शक्ति होती है। वीर्य जितना ही पुष्ट व अधिक होता है उतने ही ये शुभ्र कीट महान् बलवान होते हैं और विष को पचा डालने की शक्ति रखते हैं। परन्तु ज्योंही वीर्य क्षीण होता है त्योंही ये कीट भी दुर्बल बनकर हैज़ा, प्लेग, मलेरिया के कीटाणुओं से दब जाते हैं और फिर मनुष्य भी काल के गाल में प्रवेश करता है। ये वीर्यनाश के ही दारुण फल हैं।

हस्तमैथुन से जो वीर्यनाश किया जाता है उससे शरीर और दिमाग़ के समस्त स्नायुओं पर बड़ा भारी धक्का पहुँचता है। जिससे पक्षाघात, ग्रन्थिवात, सन्धिवात, अपस्मार-मृगी और पागलपन आदि भीषण रोगों की उत्पत्ति होती है। व्यभिचार तो सर्वथा निन्द्य है ही, परन्तु उससे भी महानिन्द्य यह हस्तमैथुन का कर्म है। हस्तमैथुन द्वारा वीर्य के निकलने से कलेजे में विशेष धक्का लगता है, जिससे क्षय, खांसी, श्वास, यक्ष्मा और "हार्ट डिज़ीज़" नामक महा भयानक हृदय-रोग हो जाते हैं। हृद्रोग से ऐसे अभागे मनुष्य की कौन से समय में मृत्यु होगी इसका कुछ भी निश्चय नहीं होता। अकाल ही में यह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। मस्तिष्क पर तो बिजली का सा धक्का लगता है। हस्तमैथुन से सिर फ़ौरन हलका और खाली पड़ जाता है। स्मृति (याददास्त) सु-बुद्धि प्रतिभा सभी चौपट हो जाते हैं और अन्त में ऐसा नष्ट-वीर्य पुरुष पागल सा बन जाता है। पागल-खानों में सौ में ९५ आदमी व्यभिचार और हस्तमैथुन के ही कारण पागल बने होते हैं। यही हालत अपनी स्त्री से अति रति करने वालों की भी हुआ करती हैं।

टारेन्टों के डाक्टर बर्कमान कहते हैं—"सैकड़ों पागलखानों कीं जांच करने पर हमें यही ज्ञात हुआ कि जिनको हम आप नीति-

भ्रष्ट अशिक्षित व मूर्ख समझते हैं उनमें नहीं, किन्तु धर्म से व स्वच्छता से रहने वाले शिक्षित लोगों में ही यह हस्तमैथुन का रोग विशेष-रूप से फैला हुआ है।" खेतों में शारीरिक परिश्रम करने वाले मूर्खों में नहीं किन्तु शहरों के पुस्तक-कीट बने हुए नवयुवकों और आदमियों में ही यह घृणित रोग विशेष फैला हुआ है। माता-पिता इस भीतरी कारण को नहीं जानते। वे समझते हैं कि परिश्रम की अधिकता से ही बालकों की ऐसी दुर्दशा हुई है। मस्तिष्क कमज़ोर होते ही आंखों की ज्योति और कान व दांत की शक्ति भी कमज़ोर होजाती है। बाल झड़ने और पकने लगते हैं। राजा के घायल होते ही जैसे संपूर्ण सेना एकबारगी घबड़ा जाती है, उसी प्रकार वीर्यरूपी राजा को आघात पहुँचते ही शरीर की इन्द्रियरूपी सेना एकबारगी अस्वस्थ व कमज़ोर हो जाती है। आंख, कान, नाक, जिह्वा, वाणी, पैर, त्वचा, आंतें और मलमूत्रेन्द्रिय अपना काम करने में असमर्थ हो जाती हैं, फिर तो ऐसे पुरुष का बहुत जल्द नाश होता ही है।

हस्तमैथुन से सम्पूर्ण शरीर पीला, ढीला, फीका; दुर्बल व रोगी बन जाता है। मुख कान्ति-हीन व पीला पड़ जाता है। ऐसा पुरुष जीवित रहते हुये भी मुर्दा होता है। हाय ! जिस विषयानन्द को कामी लोग ब्रह्मानन्द से भी बढ़ कर समझते हैं, वह विषयानन्द भी ऐसे पतित पुरुष ज्यादा दिन तक नहीं भोग सकते। इन्द्रिय दुर्बलता के और अन्यान्य रोगों के कारण वे गार्हस्थ्य सुख भी नहीं भोग सकते। उनकी सन्तानोत्पादन शक्ति नष्ट हो जाती है, जिससे उनकी स्त्रियां वन्ध्या बनी रहती हैं। अथवा सन्तान हुई तो कन्या ही कन्या होती हैं ऐसे लोग काम के मारे बेकाम बन जाते हैं। सन्ततिसुख

से वे हाथ धो बैठते हैं। उनकी स्त्रियों को कभी सन्तोष नहीं होता है। फिर वे व्यभिचार करने लगती हैं। स्त्रियों के बिगड़ने से सन्तान भी दुःसाध्य होती है व अधर्म की वृद्धि होती है। अधर्म के फैलते ही घर में व देश में दारिद्र्य, अकाल व अशान्ति आदि फैलते हैं। फिर सुख की आशा कहाँ? अन्त में सब कुल नरक गामी होता है। (गीता अ० १ ला श्लोक ४१ से ४४ देखो) इस महापाप के मूल कारण व भागी दुराचारी पुरुष ही होते हैं।

हाय! यह बड़ा ही अधर्म और दुष्ट कर्म है। जिस अभागे को इसके करने का एक बार भी दुर्भाग्य प्राप्त हुआ तो धीरे-धीरे यह "शैतान" हाथ धोकर उसके पीछे पड़ जात है, यहाँ तक कि प्राण बचना भी मुश्किल हो जाता है। ऐसे पुरुष इस महानिन्द्य कुटेव के पूर्ण गुलाम बन जाते हैं। दुर्बल चित्त के कारण इच्छा करने पर भी वे संयम नहीं कर सकते। हज़ारों प्रतिज्ञाओं करने पर भी एक भी प्रतिज्ञा पूरी नहीं होने पाती। विषयों के सामने आते ही सभी प्रतिज्ञायें ताक पर धरी रह जाती हैं। इस प्रकार वीर्य को नष्ट करने में मनुष्य का मनुष्यत्व लोप हो जाता है और उसका जीवन उसी को भारस्वरूप मालूम होने लगता है। आबोहवा का परिवर्तन थोड़ा भी सहन नहीं होता। हर समय सर्दी-गर्मी मालूम होने लगती है, जुकाम, सिर-दर्द और छाती में पीड़ा होने लगती है। ऋतुओं के बदलते ही उसके स्वास्थ्य में भी फर्क होता है और अन्यान्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं। देश में जब कभी बीमारी फैलती है तब सबसे पहले ऐसा ही पुरुष बीमार पड़ता है और अक्सर वही काल का शिकार बनता है।

हा ! ऋषि-सन्तानों के दिव्यनेत्र व ज्ञान नेत्र सब नष्ट हो गये हैं और उनको अब उपनेत्र के बिना देखना भी मुश्किल हो गया है। अज्ञान की घनघोर घटा भारत-आकाश को चारों ओर से आच्छन्न कर रही है। आर्य-सन्तान आज पूर्णतया तेजोहीन व गुलाम बन कर भारत-माता का मुख कलङ्कित कर रही है ! हा ! शोक !! शोक !!!

बस अब हम इससे अधिक वर्णन करना नहीं चाहते। केवल वीर्य भ्रष्टता के प्रमुख चिन्ह ही कह कर इस विषय को समाप्त करते हैं जिससे कि लोग पतित बालक, बालिका, व स्त्री-पुरुष को फौरन पहचान सकें।

वीर्यनाश के मुख्य लक्षण

(१) काम पीड़ित वीर्यघ्न (वीर्य को नष्ट करने वाला) बालक बड़े आदमियों की तरफ आंख से आंख मिला कर नहीं देख सकता। किसी अपराधी की तरह शर्मिन्दा होकर नीचे देखता है अथवा मुँह छिपाना चाहता है।

(२) बहुत से चालाक या धूर्त लड़के झूठे ही छाती निकाल कर समाज में इतस्ततः ऐंठते हुए अकड़ कर घूमा करते हैं। वे ज़रूरत से अधिक ढीठ बन जाते हैं, कारण यह कि ऐसा करने से उनके दुर्गुण छिप जायँगे और लोगों की दृष्टि में वे निर्दोष जँचेंगे।

(३) उसका आनन्दमय व हँसमुख चेहरा दुखी व उदास बन जाता है। सूरत रोनी बन जाती है। प्रसन्न-स्वभाव नष्ट होकर चिड़चिड़ा, क्रोधी व रुक्ष (रूखा) बन जाता है। चेहरा फीका, पीला व मुर्दे की तरह निस्तेज बन जाता है।

(४) गालों पर की पहले की वह गुलाबी छटा नष्ट होकर गालों पर झाईं पड़ने (काले दाग पड़ना) लगती है। यह अत्यन्त वीर्यनाश का निश्चित लक्षण है।

(५) आंखें व गाल अन्दर धँस जाते हैं और गाल की हड्डियां खुल जाती हैं।

(६) बाल पकने व झड़ने लगते हैं। मूछें पीली व सुर्ख यानी लाल बन जाती हैं। बारह वर्ष के उपरान्त बाल का सफेद होना वीर्यनाश का स्पष्ट लक्षण है।

(७) कोई भी रोग न रहते हुए अकाल ही में बृद्ध पुरुष की तरह जर्जर,दुर्बल व ढीले बनना, किसी अच्छे काम में दिल न लगना व नाताकत बनना तथा थोड़े ही परिश्रम से व दौड़ने से हांफने लगना और मृतपिण्ड की तरह उत्साह-हीन बनना; दैनिक काम करना भी अच्छा न लगना; सामान्य से सामान्य काम भी कठिन जान पड़ना।

(८) चित्त में कुचिन्ताओं का बढ़ना। थोड़े ही डर से छाती में बेहद धड़कन आना तथा भयभीत हो जाना। थोड़ा सा भी दुख पहाड़ सा मालूम होना।

(९) बार बार झूठी ही अस्वाभाविक भूख लगना अथवा भूख का मन्द पड़ जाना, यह भी वीर्यनाश का प्रमुख चिन्ह है। अपच और मलबद्धता (कब्जियत) इसका निश्चित परिणाम है। चटपटे मसालेदार पदार्थ खाने में रुचि रखना।

(१०) नींद का न आना; यदि आई तो ऐसी आना जैसी कुम्भकरण की निद्रा। उठते समय महा आलस्य व निरुत्साह मालूम करना और आंखों का भारी पड़ना।

(११) रात्रि में स्वप्नदोष होना, यह पापी व कामी मन का पूर्ण लक्षण है।

(१२) वीर्य का पानी जैसा पतला पड़ना और पेशाब के समय वीर्य का बूँद बूँद बाहर निकलना, यह भी हस्तमैथुन का एक मुख्य चिन्ह है। इसका अन्तिम भयानक परिणाम पुरुषत्व का नाश अर्थात् नपुंसकता है।

(१३) बार बार पेशाब होना तथा गरमी, परमा, प्रमेहादि उग्र रोग होना।

(१४) हाथ पैर और शरीर के पोर-पोर में (सन्धि में) दर्द मालूम होना। हाथ पैरों में शिथिलता, जड़ता व सनसनी उत्पन्न होना तथा उनका मुर्दे की तरह ठंडा पड़ जाना।

•(१५) तलवे तथा हथेलियों का पसीजना, यह वीर्य-भ्रष्टता का मुख्य लक्षण है।

(१६) हाथ पैर में कम्पन मालूम होना, (हाथ में पकड़ा हुआ कागज़ व कोई वस्तु हिलने लगना, हाथ काँपना)

(१७) नाटक, उपन्यास आदि शृंगारिक किताबें तथा चित्र पढ़ने व देखने की अत्यन्त रुचि रखना।

(१८) स्त्रियों में बार बार आना जाना; निर्लज्जता से गीध व ऊँट की तरह सर उठाकर या घुमा कर किंवा चोर-दृष्टि से छिपकर स्त्रियों की तरफ देखना।

(१९) चेहरे पर पिटिका (मुहरसा) उभड़ना, यह पापी व कामी मन का पूर्ण लक्षण है।

(२०) किसी समय ऊपर उठते समय एकाएक दृष्टि के सामने अँधेरा छा जाना तथा मूर्छा आ जाने से नीचे गिर पड़ना। स्मरण शक्ति का ह्रास होना। देखे हुये स्वप्न का याद न आना। रखी हुई वस्तु का स्मरण न होना और कण्ठ की हुई कविता या पाठ भी भूल जाना और मानसिक दुर्बलता का बढ़ जाना।

•(२२) आबोहवा का परिवर्तन न सहा जाना।

(२३) चित्त का अत्यन्त चंचल, दुर्बल कामी व पापी बनना और कोई भी प्रतिज्ञा पूरी न कर सकना तथा सब काम अधूरे ही करके छोड़ देना। एक भी अच्छा काम पूर्ण न करना, पर कुकर्म प्रयत्न पूर्वक पूरा करना। गिरगिट की तरह सदा विचार व निश्चय बदलते रहना और सदा मलमलीन व अपवित्र बने रहना।

(२४) दिमाग़ में गर्मी छा जाना। नेत्रों में जलन उत्पन्न होना वा नेत्रों में पानी बहने लगना।

(२५) क्षण ही में रुष्ट व क्षण ही में तुष्ट होना।

(२६) माथे में, कमर में, मेरुदण्ड में और छाती में बार बार दर्द उत्पन्न होना।

(२७) दांत के मसूड़े फूलना। मुख से महान् दुर्गन्धि का आना तथा शरीर से भी* बदबू निकलना। वीर्यवान् के शरीर से सुगन्धि निकलती है अतः दांत को बिलकुल साफ़ रखना चाहिये।

---

* दुर्गन्धो भोगिनो देह जायते बिन्दुसंक्षयात्।

शिवदास वामन

(२८) मेरुदण्ड का झुक जाना; फिर हर समय झुककर बैठना।

(२९) वृषण की वृद्धि होना तथा उनका विशेष लटक जाना।

(३०) आवाज की कोमलता नष्ट होकर आवाज़ मोटा, रुखा अप्रिय बन जाना।

(३१) छाती का दुर्भंग हो जाना अर्थात् छाती पर का अंतर गहरा और विस्तृत बन जाना, और छाती की हड्डियाँ दीखना।

(३२) नेत्ररूपी चन्द्र-सूर्य को ग्रहण लगना। नाक के कोने में प्रथम कालिमा छा जाती है, फिर बढ़ते बढ़ते आँखों के चतुर्दिक ग्रहण लग जाता है अर्थात् चारों ओर से नेत्र काले पड़ जाते हैं। यह अत्यन्त वीर्यनाश का बड़ा भयानक और भीषण चिन्ह हैं।

(३३) किसी बात में कामयाबी न होना तथा सर्वत्र निन्दित व अपमानित बनना यह वीर्यनाश की पूरी निशानी है। सन्तति सम्पति का धीरे धीरे नाश होना, अधर्म, व्यभिचार व पाप का बढ़ना, आयु का घट जाना; वेदशास्त्राज्ञाओं को कुछ भी न मानना और अपनी ही मनमानी करना, अर्थात् "विनाश काले विपरीत बुद्धिः" इस न्याय से सब उलटी ही बातें करना यह गुलामी के खास चिन्ह हैं। सम्पूर्ण अपयश, दुख व गुलामी का कारण एक मात्र वीर्य का नाश ही है।

(३४) अन्त में कभी कभी दुःख और पश्चाताप के मारे आत्महत्या करने का विचार करना। इति प्रमुख चिह्नानि।

४—माता पिताओं का कर्तव्य

प्रत्येक माता, पिता, गुरु, बन्धु, तथा मित्र का सब से प्रथम

कर्तव्य अब यही होना चाहिये कि यदि उपर्युक्त लक्षणों में कोई भी एक दो लक्षण पुत्र-पुत्री और शिष्य-मित्रों में दिखाई दे तो फौरन उनके सामने पाप के परिणाम का भीषण चित्र तथा ब्रह्मचर्य की श्रेष्ठ महिमा स्पष्ट शब्दों में रखनी चाहिये। इसमें लज्जा संकोच करना तथा अपमान समझना मानो अपनी सन्तान का पूर्ण नाश ही करना है। "शरीरं व्याधि मन्दिरम्" तब ही बनता है जब कि मनुष्य ब्रह्मचर्य के प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन करता है। अतः उन्हें उन नियमों का अवश्य ज्ञान करा देना चाहिये। माता, पिता व गुरू ब्रह्मचर्य का पूर्ण स्पष्ट वर्णन करने में लजाते हैं। परन्तु यह उनकी भारी भूल एवं मूर्खता है। अपने पर बीती हुई दुर्घटनाओं को, उनके दुष्परिणाम माता-पिता तथा गुरुजनों को आज भी उसकी मर्जी के विरुद्ध भोगने पड़ रहे हैं, लड़कों से साफ़ साफ़ कहें और उनसे बचे रहने के लिये अपने अनुभूत इलाज को स्पष्ट बतलायें अथवा यह जीवन पथप्रदीप ग्रन्थ अपने प्रिय बालकों, शिष्यों अथवा मित्रों के हाथ में रख दें, जिससे उनका कर्त्तव्यमार्ग उन्हें साफ़ दिखाई दे।

कई लोग यह समझते हैं कि यदि बालकों के सामने ब्रह्मचर्य की रक्षा के हेतु हस्तमैथुन, शिशुमैथुनादि महानिन्द्य बुराइयों का वर्णन करें, तो वे यदि न भी जानते होंगे तो इन दुर्गुणों को जान लेगें, परन्तु यह धारणा बिलकुल वृथा व नाशकारी है। यदि आप न कहेंगे तो बालक कुसंगों में पड़ कर दूसरों से अवश्य ही उपर्युक्त दुर्गुण सीख लेंगे। परन्तु बुराइयों का तीव्र निषेध व ब्रह्मचर्य की उज्वल महिमा आप वर्णन करेंगे तो आपके बालक अवश्य ही सदाचारी व

ब्रह्मचारी बनेंगे ऐसा पूर्ण विश्वास रक्खो। गन्दगी या गड्ढे के ढांकने के बनिस्बत उससे बचे रहने का ज्ञान करा देना ही बुद्धिमानी व सुरक्षितता है और यही माता-पिता तथा गुरुजनों का पवित्र कर्तव्य है। यदि गुरुजन अच्छे अच्छे कामों द्वारा अच्छे ढङ्ग से बालक-बालिकाओं को ब्रह्मचर्य की केवल पन्द्रह मिनट स्कूलों में या घर ही पर बढ़िया शिक्षा दें, तो क्या ही अच्छा हो? हम पूर्ण विश्वास से कह सकते हैं कि भारत का इससे अति शीघ्र उद्धार हो सकता है। अतः माता पिताओ! सावधान!!

५—वैद्य व डाक्टर

माता पिता तथा गुरुजनों की लापरवाही के कारण कई अच्छे बालक कुसंग में पड़कर बिगड़ जाते हैं। वीर्य-नाश व व्यभिचार के कारण वे अनेकानेक दारुण रोगों से आक्रान्त हो जाते हैं; फिर वे वैद्य व डाक्टरों के मकान व दुकान छिपे-छिपे ढूँढ़ने लगते हैं। कोई मदनमंजरी पिल्स, धातुपुष्टि की गोलियाँ, वीर्यगुटिका, नपुंसकारिघृत, कोई जड़ी, बूटी, लेह पाक, चूर्ण आदि दूर दूर से मँगवाते हैं, और बेचारे लाभ की जगह और भी तन से, मन से व धन से बर्बाद हो जाते हैं; इसका कारण यह है कि जितनी धातु-पौष्टिक औषधियाँ होती हैं वे सब कामोत्तेजक होती हैं; उनके सेवन से शरीर में यदि कुछ ताक़त भी दीख पड़ती हो तो केवल मनुष्य की भावना तथा उस औषधि के साथ खाये हुये दूध मलाई आदि का प्रभाव है। संसार में ऐसा कोई भी वैद्य समर्थ नहीं है जो दवादर्पन द्वारा वीर्यहीन को वीर्यवान अर्थात् ब्रह्मचारी बना सकता हो। यदि कोई

ऐसा कहे तो उसकी धृष्ठता एवं मूर्खता है। एक मात्र शुद्ध मन ही मनुष्य को ब्रह्मचारी एवं वीर्य धारण करने के लिये समर्थ बना सकता है। दवा-दर्पण कदापि नहीं, इनसे तो वीर्य का और भी नाश होता है।

आजकल जिसे देखो वही वैद्य बन बैठा है 'बूढ़ा भी जवान हो गया,' 'मुर्दा भी जिन्दा हो गया' 'अजब ताक़त की दवा,' ऐसे ऐसे झूठे विज्ञापन का मोहजाल फैला कर वेश्याओं की तरह बाल-बालिकाओं को तन, मन, धन से व प्राण से ये वैद्य बरबाद कर रहे हैं। प्यारे भाइयो, ऐसे स्वार्थान्ध वैद्यों से बचे रहो। सुयोग्य वैद्यों तथा माता पिता व गुरुजनों के सामने अपने रोग का स्पष्ट वर्णन करके उनसे उचित सलाह लो, बहुत सी औषधियाँ अन्य रोगों के लिये भी दिव्य गुणकारी होती हैं; परन्तु एक मात्र विशुद्ध मन सम्पूर्ण संसार में वीर्य रक्षा के लिये दिव्यौषधि है। अन्य सब उपाय वृथा व आनुषंगिक है।

जब रोगियों के बारे में वैद्यों का कुछ भी वश नही चलता तो अन्त में जल-वायु परिवर्तन के लिये ही उन्हें सलाह दी जाती है; परन्तु उसके पहले वे रोगियों को ख़ूब लूट लेते हैं। सचमुच शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध व पवित्र भूमि, विपुल प्रकाश व विपुल अवकाश बस ये ही इस लोक के पञ्चामृत हैं। इसी का सेवन करने से हमारे पूर्वज ऋषि-मुनि इतने दीर्घायु आरोग्य-सम्पन्न, ज्ञानी, पवित्र-मानस व सामर्थ्य-सम्पन्न होते थे। यदि हम भी इसी "पञ्चामृत" का यथेष्ट सेवन रोज़ नियम पूर्वक किया करेंगे, तो हम भी उनके समान निःसन्देह श्रेष्ठ बन जायँगे।

६–ब्रह्मचर्य्य व आरोग्य

"धर्मार्थकाममोक्षाणां आरोग्यं मूलमुत्तमम् ।
रोगाः तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥१॥

एक मात्र आरोग्य ही चारों पुरुषार्थों का सर्वोत्तम मूल है और रोग उन चारों को नष्ट भी कर डालते हैं, यही नहीं किन्तु जीवन को भी अकाल ही में चिन्ता और चिता पर चढ़ा देते हैं।

सच है रोगी पुरुष किसी काम का नहीं होता। वह सब के लिये बोझ स्वरूप हो जाता है। रोगी संसार और परमार्थ दोनों में नालायक बना रहता है। रोगी मनुष्य के लिये सब संसार शून्य बन जाता है। उसके लिये भोग-विलास की सम्पूर्ण चीज़ें भी दुखदायी बन जाती हैं। रोगी पुरुष चाहे राजभवन में रहे चाहे हिमालय जाय--कहीं भी सुखी नहीं हो सकता। उसकी रोनी सूरत तब ही मिट सकती है कि वह या तो मिट्टी में मिल जाय अथवा प्रकृति के अनुसार पुनः शुद्ध वर्ताव करने लग जाय।

निसर्ग के राज्य में मूलतः प्रत्येक प्राणी निस्सीम निरोग, परम सुन्दर सब प्रकार से पूर्ण तथा अव्यंग पैदा होता है, परन्तु स्वयं लोग ही अपने दुष्कृतियों द्वारा अपने दिव्य स्वरूप को, बढ़िया आरोग्य को और सुडौल शरीर को विगाड़ डालते हैं। "जो जस करइ सो तस फल चाखा" यह अमिट सिद्धान्त है। सम्पूर्ण विश्व में ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है कि जो हमें हमारी इच्छा के विरुद्ध रोगी या निरोगी बना सकती हो। गिद्ध, चील, कव्वे वगैरह उसी स्थान पर जाते हैं, जहाँ पर कोई सड़ा जानवर पड़ा रहता है, उसी तरह रोग, शोक और दुख उसी

शरीर में प्रवेश करते हैं जहाँ पर उनका खाद्य उन्हें मिलता है। आजकल के ब्राह्मण किसी मरे हुए बड़े सेठ के यहाँ जैसे फौरन बिना बुलाये दौड़े आते हैं; वैसे ही रोग, शोक दुःखादि भी नष्ट-वीर्य पुरुष के यहाँ फौरन चले आते हैं। परन्तु आरोग्य, सुख, शान्ति, समृद्धि, आनन्द इनका हाल ऐसा नहीं है, वे बड़े ही मानी हैं। दुराचारी, व्यभिचारी पुरुषों से वे कोसों दूर रहते हैं; केवल सदाचारी ब्रह्मचारी पुरुषों के ही यहाँ वे वास करते हैं; ब्रह्मचारी पुरुषों को कोई भी रोग नहीं सता सकता। प्लेग, कालरा भी उनका कुछ नहीं कर सकते। सब कोई दुर्बलों को ही मारते हैं, बलवान को कोई सता नहीं सकता। "दैवो दुर्बल घातकः।" बस, यही प्रकृति का कायदा है। अतः हमको अब सब तरह से बलवान ही बनना होगा, क्योंकि बलवान ही राजा है, चाहे वह भले ही निर्धन हो। रोगी पुरुष को राजा होने पर भी भिखारी और पूर्ण अभागा समझना चाहिये। "तन्दुरुस्ती हज़ार नियामत है।" भोगी पुरुष सदा रोगी ही बना रहता है, वह कभी भी योगी यानी सुखी नहीं हो सकता, वह सदा वियोगी अर्थात् दुःखी ही बना रहता है। व्यभिचारी पुरुष कदापि निरोग और बलवान नहीं हो सकता। एक मात्र वीर्यवान् ही बलवान् आरोग्यवान, भक्त और भाग्यवान हो सकता है। वीर्यनष्ट पुरुष सदा रोगी, दुःखी, पापी और अभागा ही बना रहता है। उसका उद्धार फिर से वीर्यधारण किये बिना सात जन्म में भी होना असम्भव है।

संसार में तीन बल हैं—एक शरीरबल, दूसरा ज्ञानबल और तीसरा मनोबल। इन तीनों बलों में मनोबल अर्थात आत्मबल सब से श्रेष्ठ बल है। बगैर आत्मबल के और सब बल वृथा हैं।

12210

बाहुबल, सैन्यबल, द्रव्यबल, नीतिबल, मतिबल, धृतिबल, निश्चय-बल, चारित्र्यबल, धर्मबल ब्रह्मबल, वग़ैरह जितने बल संसार में मौजूद हैं, सब इन्हीं तीनों बलों के अन्तर्गत हैं। इनमें सबसे पहिली सीढ़ी 'शरीर-बल'की है। बग़ैर निरोग शरीर के ज्ञानबल और आत्म-बल प्राप्त नहीं हो सकते। शरीरबल ही हमारे सम्पूर्ण बलों का एक मात्र मूलाधार है। अतएव हमें व्यायाम और ब्रह्मचर्य द्वारा सब से प्रथम शरीर सुधार अवश्य कर लेना चाहिये।

आज हमें भारत के उत्थान के लिये आत्मबल अर्थात चरित्र बल की तो मुख्य आवश्कता है ही, परन्तु उसके साथ ही साथ शरीरिक बल और ज्ञानबल की भी अत्यन्त अनिवार्य रूप से आवश्यकता है। शरीर-बल न होगा तो हम संसार-संग्राम में विजय प्राप्त नहीं कर सकेंगे। दुर्बलता के कारण हम दूसरों के तथा काम क्रोध रोगादि वैरियों के सदा दास ही बने रहेंगे। हमारे घर में यदि कोई ज़बरदस्ती से घुस गया हो तो उसे बाहर घसीट कर ले जाने के लिये हम में शरीर-बल का ही होना परम इष्ट है। बग़ैर शरीरबल के वह डाकू खुशी से बाहर नहीं निक-लेगा। अतः, शरीरबल प्राप्त करना सब से प्रथम ध्येय होना चाहिये। क्योंकि शरीरबल ही सब ध्येयों का मुख्य आधार है। बग़ैर शरीर सुधार के हम किसी अवस्था में सुखी और स्वतंत्र नहीं हो सकते और न किसी काम में सिद्धि ही प्राप्त कर सकते हैं। शरीर रोगी होने पर संसार का कोई भी पदार्थ व व्यक्ति हमें कभी सुखी व शान्त नहीं बना सकता। केवल हम ही अपने को एक मात्र सुखी, स्वतंत्र और शान्त बना सकते हैं। अतएव शरीर सुधार हमारा प्रथम लक्ष्य होना चाहिये। क्योंकि यही चारों पुरुषार्थों का मुख्य मूल है; और इसी में हमारी मुक्ति किंवा स्वतन्त्रता भरी हुई है।

"Sound mind in a Sound Body" यानी "शरीर सुखी और पुष्ट है तो आत्मा भी सुखी और पुष्ट है और शरीर दुखी और दुर्बल है तो आत्मा भी दुखी एवं दुर्बल है," यही प्रकृति-शास्त्र का नियम है। शरीर निरोग होने पर हमारी आत्मा भी अत्यन्त निर्मल, बली और सामर्थ्य-संपन्न बन जाती है। रोगी शरीर में आत्मा की उन्नति का होना कठिन है। अतएव प्रकृति के नियमानुसार चलकर सदाचरण द्वारा ब्रह्मचारी बन, अपना शरीर सुधार लेना हमारा सब से प्रथम और श्रेष्ठ कर्तव्य है।

हमारा केवल यही एक मात्र शरीर नहीं। स्थूल, सूक्ष्म, कारण और महाकारण, ऐसे हमारे चार शरीर और इनके अतिरिक्त हमारे इस शरीर रूपी साम्राज्य में असंख्य शरीर-धारी कीटाणुओं की सेना सर्वत्र भरी हुई हैं जो कि हमारी रात-दिन रक्षा कर रही है। इन सबका अधिष्ठाता आत्मा उनका राजा है। विजय उसी राजा की होती है जिसकी सेना बलवान और प्रचण्ड है। ठीक यही हालत हमारे शरीररूपी सेना की और आत्मारूपी राजा की समझिये।

७—ब्रह्मचर्य के विषय में प्रमाद

आज हिन्दू जाति इतनी पतित क्यों हुई है! वह इतनी रोगी, दुर्बल, निरुत्साही, मूर्ख और अल्पायु क्यों हुई? जिस भारत-वर्ष में भीष्म पितामह और हनुमान जैसे शूरवीर, गम्भीर

और ज्ञानी ब्रह्मचारी हुये हैं, जहां पर व्यास, वशिष्ठ, वाल्मीकि, गौतम, भरद्वाज, अत्रि पराशर जैसे त्रिकाल ज्ञान के समुद्र हुये हैं, जहाँ पर धर्मराज, शिवि, दधीचि, हरिश्चंद्र, कर्ण और बलि जैसे महान प्रतापी, सत्यमूर्ति, धर्मावतार हुये हैं; जहां पर नीति, न्याय, मर्यादा के पालने वाले बड़े बड़े शूरवीर रणधुरन्धर जनक, परीक्षित, दशरथ, रघु जैसे राजे महाराजे हुये हैं; जहां पर विश्वामित्र, भरत, भगीरथ जैसे निस्सीम कठोर व्रत के व्रतधारी महात्मा हुये हैं; जहां पर शुक, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार जैसे ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मचारी तपस्वी हो गये हैं; जहां पर राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न और धर्मराज, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेवादि तथा श्रीकृष्ण, बलरामादि जैसे अत्यन्त तेजस्वी, ओजस्वी, आज्ञाकारी सुपुत्र और सहोदर हो गये हैं: जहां पर सीता, सावित्री, अनुसूया, दमयन्ती, शकुन्तला, रुक्मिणी द्रौपदी, लोपामुद्रा, मैत्रेयी, गांधारी जैसी महान पतिनिष्ठा और अत्यन्त तेजस्वी सती स्त्रियां हो गयी हैं; जहां ध्रुव, लव-कुश; प्रह्लाद, अभिमन्यु और भरत जैसे महान् तेजस्वी, ओजस्वी और सामर्थ्य-सम्पन्न सिंहशावक से बालक हुये हैं— उसी वीर-प्रसू भारतभूमि में हम उन्हीं की सन्तान आज ऐसी नीच, पतित, दुर्बल, रोगी, मूर्ख अल्पायु, परतंत्र और पूर्णतया अभागी क्यों हुई हैं ? इसका असली कारण क्या है ? हमको ऐसा नीच, परतंत्र और दुर्भागी बनाने वाले हमारे दुर्धर शत्रु कौन हैं ? ·····ठहरिये ! ज़रा भगवद्वाणी को प्रथम सुन लीजिये, साथ ही तुलसी वचन को भी देखिये ।

'आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।'

"काहु न कोउ सुख दुखकर दाता, निजकृत कर्म भोग सब भ्राता"

क्या अपने शत्रु हम ही हैं और अपने मित्र भी हम ही हैं? क्या अपने ही कृत कर्मों से हमें ऐसी नीच दशा प्राप्त हुई है? हां, भगवद्वाणी तथा संतवाणी हमें यही बतला रही है—"तुम ही अपने मित्र हो तथा तुम ही अपने शत्रु भी हो, अपने पतन के कारण केवल तुम्हीं हो।"

सत्य है! नीति, न्याय, मर्यादा का उल्लंघन करने से ही अर्थात् अधर्म और अन्याय बढ़ने ही से आज हमारी ऐसी पतित हालत हुई है; वैसे ही हम अपने को सुकर्मों द्वारा अपना उद्धार भी कर सकते हैं। उन्नति के लिये अब हमें धर्म का आचरण अवश्य ही अति शीघ्र शुरू करना होगा! श्री गीता-देवी के सच्चे अध्ययन की आज हमें नितान्त आवश्यकता है। आज हमें सच्चे कर्मवीरों की बड़ी ही ज़रूरत है। वीर्यभ्रष्ट कच्चे कर्मवीर बड़े ही घातक होते हैं; बीच ही में किसी डर के कारण अपने कर्तव्य को छोड़ भागने वाले पुरुष बड़े कायर और नामर्द होते हैं; "काम मर्दों का नहीं काम अधूरा करना, जो बात ज़बां से निकाले उसे पूरा करना।" बस ऐसे ही मर्द पुरुष की आज भारत को ज़रूरत हैं। नामर्द और व्यभिचारी पुरुषों का अब यहां कुछ भी काम नहीं है। क्योंकि ऐसे लोग देश के घोर शत्रु होते हैं। वीर्यनाश के कारण आज तक बहुत कुछ नाश हो चुका है। अब हमें अपने पूर्वजों का अनुकरण अति शीघ्र करना होगा और दुराचार को छोड़ पूर्ण सदाचारी और ब्रह्मचारी बनना होगा। 'हमारे बाबा ऐसे थे और वैसे थे' ऐसा कोरा अभिमान और कोरी बातें हमें अब साफ छोड़ देनी होगी। उनकी जैसी प्रत्यक्ष करनी ही करके हमें अब दिखलानी होगी। हमें अपने पूर्वजों की तरह प्रत्यक्ष वीर्यवान और

सामर्थ्यवान बनना होगा। आज भी हम भीमार्जुन जैसे बली और धनुर्धारी अर्जुन बन सकते हैं। प्रोफेसर माणिकराव, गामा, प्रो० एकनाथ मूर्ति और प्रो० शहा इस बात के आज जीते जागते दृष्टान्त हैं। हमारा भोजन हमी को खाना पचाना पड़ता है। केवल भोजन की तरफ देखने से अथावा उसकी खुशबू से अथवा उसकी कोरी तारीफ से ही सिर्फ हमारा पेट कभी नहीं भर सकता; वैसे ही अपना बल, तेज, सामर्थ्य स्वातंत्र्य और वैभव भी हम ही को कमाना पड़ता है। पूर्वजों की कोरी तारीफ से कुछ भी नहीं हो सकता। यद्यपि आज हमारा बहुत कुछ पतन हुआ है, तो भी सदाचार द्वारा हम पुनः ब्रह्मचारी यानी वीर्यवान् और बली हो सकते हैं। सैकड़ों प्रो० माणिकराव और सहस्रों प्रो० शहा इस भारत भूमि में पुनः निर्माण हो सकते हैं। याद रक्खो, केवल सदाचारी पुरुष ही ब्रह्मचारी और उन्नत हो सकते हैं न कि दुराचारी-व्यभिचारी पुरुष! मुर्झाये हुये पेड़ जैसे पानी मिलने से पुनः सजीव और चैतन्यमय हो सकते हैं वैसे ही सदाचरण से हमारी सम्पूर्ण गुप्त शक्तियाँ खुल पड़ती हैं और शक्तियाँ खुलते ही फिर हम अपने पूर्वजों की तरह अपना बल, तेज व पराक्रम निश्चयपूर्वक सर्वत्र दिखला सकते हैं।

८—ब्रह्मचर्य व आश्रम चतुष्टय

हमारे शास्त्रकारों ने शास्त्रों में "प्रकृति के नियमानुसार" चार आश्रम निर्धारित किये हैं। उनमें से प्रथम और सबसे प्रथम ब्रह्मचर्याश्रम है मानों यह आश्रम सम्पूर्ण आश्रमों की

नींव है और वास्तव में है भी ऐसा ही। ब्रह्मचर्याश्रम की मर्यादा उन्होंने पुरुष की २५ वर्ष की और स्त्री की १६ वर्ष की "पूर्ण दृष्टि" से निश्चित की है। इसमें तिलभर भी फर्क नहीं हो सकता। यदि कोई व्यक्ति इस नियम को तोड़े तो प्रकृति भी उस व्यक्ति को तोड़ डालती है। प्रकृति के नियम परम कठोर हैं। जो उन नियमों के अनुसार चलता है उसे वे अमृत के समान फल देने वाले होते हैं और जो उनका अतिक्रमण करता है उसे वे विषतुल्य संहारक बन जाते हैं। सदुपयोग करने से अग्नि जैसे परम उपकारी हो सकती है और दुरुपयोग करने से वही अग्नि जैसे महान विनाशक बन जाती है, ठीक यही न्याय प्रकृति के संपूर्ण नियमों का भी समझिये।

ब्रह्मचर्य दो प्रकार के हैं। एक "नैष्ठिक" और दूसरा "उपकुर्वाण।" आजन्म ब्रह्मचारी को "नैष्ठिक" कहते हैं और गुरुगृह में यथायोग्य ब्रह्मचर्य पालन कर, विद्या प्राप्ति के अनन्तर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करनेवाले ब्रह्मचारी को 'उपकुर्वाण कहते हैं।

यदि कोई आजन्म-मरण ब्रह्मचर्यव्रत धारण करे तो फिर पूछना ही क्या ? वह इस लोक में सचमुच देवता के तुल्य ही पूजनीय बन जाता है; ऐसे पुरुष बहुत कम हैं। उदाहरणार्थः— श्री समर्थ रामदास स्वामी, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द स्वामी रामकृष्ण परमहंस वगैरह इसी उच्च श्रेणी के आदर्श ब्रह्मचारी महात्मा हुये हैं जिनको आज संसार से पूजे जाते हुये हम आप प्रत्यक्ष देख रहे हैं।

दूसरा आश्रम 'गृहस्थाश्रम' है। इसकी मर्यादा २५ से लेकर ५० वर्ष तक की निश्चित की गई है। इसमें धर्माचरण

से चलकर केवल सु-प्रजा निर्माण करने की आज्ञा है, न कि कु-प्रजा।

तीसरा ५० से लेकर ७५ वर्ष तक 'वानप्रस्थाश्रम' है। इस अवस्था में अपनी स्त्री को माता तुल्य मान कर, उसके साथ विषय-रहित शुद्ध व्यवहार रखने की आवश्यकता है।

चौथा और अन्तिम 'संन्यासाश्रम' है जिसमें कि सर्व संग परित्याग कर आत्म-कल्याणार्थ एकान्त का आश्रय लेना पड़ता है और अहर्निश ब्रह्मचिन्तन करना पड़ता है, न कि विषय चिन्तन।

एक मात्र ज्ञानी और विरक्त पुरुष ही संन्यास का अधिकारी हो सकता है। मूर्ख व रोगी पुरुषों को संन्यासी होना पूर्ण लांछनास्पद और अवनतिप्रद है। मूर्ख पुरुष ख़ासकर पेट के लिये ही बीच में संन्यासी बाबा बन जाते हैं। लेखक ने ऐसे कई मूर्ख और दुराचारी संन्यासी और कई अधम वानप्रस्थाश्रमी अपनी आँखों देखे हैं और गृहस्थाश्रमियों को तो आप हम सभी देख रहे हैं।

९—ब्रह्मचर्य और विद्यार्थी

ब्रह्मचर्याश्रम को विषयरूपी सुरङ्ग से उड़ाने वाले आज लाखों करोड़ों स्त्री-पुरुष समाज में जिधर देखो उधर चारों ओर दिखाई दे रहे हैं। जड़ काटने से जैसे पेड़ की स्थिति होती है, वैसे ही ख़राब और गिरी दशा ब्रह्मचर्यरूपी जड़ को काटने वाले गृहस्थाश्रमियों की हो गई है। "नष्टे मूले नैव

शाखा न पत्रम्' इस न्याय से विचारे दिन व दिन सूखे जा रहे हैं और निःसन्तान बन रहे हैं। बाल पके हुये, अन्धे बने हुये, चश्मे लगे हुये, कमर टूटी हुई, बाहर भीतर रोगों से घुले हुये, आँख गाल अन्दर धँसे हुये, दुखी, दुर्बल और निरुत्साही बने हुये, निःसत्व निस्तेज बन कर अत्यन्त डरपोक बने हुये, सब सब तरह से आत्म-पतित, पापी और गुलाम बने हुये, असंख्य दुखों में सने हुये और जिन्दी ठठरी बने हुये, तिस पर भी श्वान, शूकर की तरह कामाग्नि में जलते हुये, ऐसे २०-२५ वर्ष के निर्वीर्य बूढ़े, विद्यार्थी और गृहस्थाश्रमी ही सर्वत्र दिखलाई दे रहे हैं। हा! यह दृश्य बड़ा ही भयानक मालूम पड़ रहा है। इस हृदयद्रावक दृश्य से भारत-प्रेमियों का हृदय आज भीतर ही भीतर जल रहा है। जिनके ऊपर भारत का सच्चा उद्धार निर्भर है, जो कि भारत के मुख्य आशास्थल और आधारस्तम्भ हैं, ऐसे नवजवानों को ऐसी पतित और शोकपूर्ण दशा में देख कर किस भारतपुत्र का हृदय दुख से हिल नहीं जाता। हमें तो रुलाई आने लगती है।

प्रभो! यह हमारा बड़ा भारी पतन हुआ। जो भारत एक समय परमोच्च उन्नति का केन्द्र था, जिस भारत में हज़ारों बलशाली और वीर्यशाली नरसिंह वास करते थे, जिसकी ओर कोई भी राष्ट्र आंख उठाकर नहीं देख सकता था, जो सम्पूर्ण विद्याओं में सब का गुरु था, जिसका प्रभाव सम्पूर्ण दुनिया पर पड़ा हुआ था, जिसके अंगुलिनिर्देश से सम्पूर्ण दिङ्मण्डल कांप उठता था, वही भारत आज गुलामों का कैदखाना सा बन रहा है और सब तरह से पीसा, निचोड़ा और जलाया जा रहा है। हाय! इससे बढ़कर पतन और

क्या हो सकता है ? नहीं, हमको अब तुरन्त उठ खड़ा होना चाहिए। इसी में हमारी भलाई है। यदि न चेतेंगे तो भारत का चिन्ह तक मिट जाने की संभावना है। इसलिए ऐ मेरे भारतवासी भ्रातृ-भगिनी-मित्रगण ! अब सावधान होइए ! आंखें खोलकर अपने तथा अन्य देशों की ओर ज़रा निहारिये और निहार कर अपना पूर्व वैभव प्राप्त करने के लिये निश्चिन्तता से कटिबद्ध हो ब्रह्मचर्य द्वारा अपना पुनः उद्धार कर लीजिए। एक ब्रह्मचर्य ही के द्वारा हमारा उद्धार होना सहज-संभव है, अन्य सब उपाय वृथा हैं। विन्दु को साधने वाला सप्तसिन्धुओं को भी अपनी मुट्ठी में—कब्जे में ला सकता है। संपूर्ण संसार में ऐसी कोई भी वस्तु व स्थिति नहीं है, जिसे ब्रह्मचारी पुरुष प्राप्त न कर सकता हो। हाथी का रहस्य जैसे अंकुश है वैसे ही हमारे संपूर्ण विद्या, वैभव और सामर्थ्य का रहस्य एक मात्र हमारा ब्रह्मचर्य ही है। अभी भी ब्रह्मचारी बन सकते हैं और वीर्यधारण करके अपना तथा भारत का सच्चा उद्धार कर सकते हैं। अतः ऐ मेरे परम प्रिय भारतपुत्रो ! अब नींद को छोड़ दो ! अब तक बहुत कुछ सो चुके हो और खो चुके हो। अब जागृत होकर खड़े हो जाओ और खड़े होकर निश्चय के साथ अपने पैर सिंह के समान उन्नति की ओर निर्भयता से बढ़ाओ। अवश्य विजय होगी, निश्चय जानो।

१०—काम का दमन

"काम का उद्भव ही न होने दो"।

एक मनुष्य ने शेर का बच्चा पाला था। बच्चा बहुत गरीब था। एक दिन नींद में वह बच्चा मालिक का बांया हाथ चाटने

‡"He who sleeps his Fortune sleeps".

लगा। चाटते चाटते दांत लग जाने से हाथ का थोड़ा सा खून निकला। अब बच्चा कान टेढ़ा किए खून चाटने लगा। तकलीफ के मारे मालिक जाग पड़ा और अपना हाथ हटाना चाहा; किंचित हाथ हटाते ही शेर एक दम खड़ा हो गया और जाति स्वभावानुरूप "गुर्र्र्र्र्र्र्र्र्र्र्र" गर्जन कर उसने हाथ को पंजे के नीचे मजबूती से दबा लिया और फिर रक्त चाटने लगा। मालिक ने सोचा, "अरे बाप रे! अब तो मामला बड़ा बेढब है। यदि मैं इसको और भी प्यार करूँ तो यह मुझे फाड़ खाये बिना नहीं रहेगा"। उसने निश्चय किया और तुरन्त सन्दूक में से पिस्तौल मँगवाया। पिस्तौल मिलते ही 'रे नमक-हराम" ऐसा कह कर तत्काल धड़ाके से गोली छोड़कर उसे मार डाला।

ऐ मेरे प्यारे भातृ-भगिनी-मित्रगण! यदि कामरूपी शेर तुम्हारा शोषण करना चाहता हो तो तुम भी उसे फौरन मार डालो। २५ वर्ष तक विषय से बिलकुल दूर रहो। उसका स्मरण तक मत करो। क्योंकि पूर्वोक्त नव-मैथुनों में से प्रत्येक मैथुन ब्रह्मचर्य का नाशक है। अन्धे को जैसे शीशा दिखलाना व्यर्थ है। वैसे ही कामान्ध पुरुष को भी उपदेश करना व्यर्थ है। उल्लू तो दिन में ही नहीं देख सकता। किन्तु कामान्ध पुरुष डबल उल्लू होता है। जो विषय अत्यन्त प्रिय व मधुर मालूम होता है और जो परमार्थ मनुष्य को इसी जीवन में अमृत तुल्य फल शान्ति देने वाला और अन्त में मुक्तिप्रद है तथा जिसका आधार ब्रह्मचर्य के ऊपर ही मुख्यतः निर्भर है, वह परमार्थ उन्हें विष के समान कड़ुआ मालूम

होता है। जो वास्तव में विष है उसे अमृत समझना और जो प्रत्यक्ष अमृत है उसे विष समझना ये घोर पाप के लक्षण हैं। यह बात निःसन्देह सत्य है कि जिसे साँप काटता है उसको मिर्च भी तीत नहीं लगती और न नीम कड़ुवी लगती है परन्तु चीनी उसे बहुत ही कड़ुवी लगती है। ठीक यही हालत विषय रूपी सर्प से दन्शित पुरुषों की भी समझिये। उन्हें सब उलटी ही बातें सूझती है और उनकी दृष्टि में पाप ही पाप भरा रहता है। वे सभी स्त्रियों की ओर पाप-दृष्टि से देखते हैं और इस प्रकार व्यर्थ पाप के भागी बन अन्त में नरक को जाते हैं। आज बड़े-बड़े देवस्थानों में भी नाच रंग व व्यभिचार घुस गया है। कई मन्दिरों पर तो भद्दे भद्दे चित्र भी खुदे हुए हैं। हा! पापी पुरुष क्या नहीं करेंगे? गंगाजी में गले तक डूबे रहने पर भी उनकी पाप-दृष्टि नहीं जाती। देव-दर्शन के बहाने मन्दिरों में और वायु सेवन के मिस से घाट पर तथा जगह जगह कई गीध बैठे हुए नित्य दिखाई देते हैं। धिक्कार है, ऐसे नारकी जीवों को!

जहाँ काम हिरदय धस्यो, भयो पुण्य का नाश।
मानो चिनगी आग की, परी पुरानी घास॥ १॥

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्॥ गीता॥

भगवान कहते हैं—नरक के तीन प्रचण्ड महाद्वार रात दिन खुले हुए हैं। सब से पहला द्वार काम का है जिसमें कि विषय के गुलाम बलात् खींचे और ठूसे जाते हैं। दूसरा द्वार क्रोधी पुरुषों के लिये है और तीसरा द्वार लोभियों के लिये है।

कामी पुरुष जीते जी ही नरक का अनुभव करने लगता है; वह जीते ही मुर्दा बन जाता है। जगद्गुरु श्री दत्तात्रेय मुनि कहते हैं—"जो लोग गन्दगी से सदा भरे हुये मल-मूत्र के स्थानों में रममाण रहते हैं, ऐसे नारकी जीव नरक से क्योंकर तर सकते हैं? ऐ पुरुषो! तुम चर्ममयी नरक-कुण्ड की ओर क्यों ताकते हो? क्या नरक के कीट बनने के लिये? छी-छी! इससे तुम्हारा कैसे उद्धार होगा? क्या यही स्वर्ग सुख है। ज़रा तुम ही सोचो कि यह स्वर्ग-भोग है या नरक-भोग? इस प्रकार तो शूकर, कूकर और गोवर के कीड़े भी आनन्द मानते हैं! इनसे फिर तुम्हारा दर्जा ऊँचा कैसा? ऊँचे दर्जे के लिये हमें अवश्य अपने आचार विचार भी ऊँचे ही रखने चाहिये! केवल मनुष्य की देह धारण कर लेने से कोई "मनुष्य" नहीं हो सकता। विद्या और विनय, तप व शान्ति, कान्ति व दान्ति (लावण्य तथा दमन शक्ति) गुण व अगर्व, धर्म व अदम्भ इत्यादि सद्गुणों से ही मनुष्य 'मनुष्य' बन सकता है और ईश्वर को प्राप्त हो सकता है। परन्तु इन सब की जड़ एक मात्र ब्रह्मचर्य है, यह सत्य बात कभी न भूलो।

कामान्ध मनुष्य तारुण्य के मद से विषय में प्रीति भले ही रखता हो और अपनी मनमानी भले ही करता हो, परन्तु वे ही विषय उसे आगे इस रीति से पटक देते हैं, जैसे पेड़ों को बाढ़ और आँधी! बेचारा मोहवश विषय में फँस कर "सुख की वृद्धि" से स्त्री-संग करता है और अपने ही वीर्य का नाश कर अपने को धन्य व कृतार्थ समझता है; जैसे मूर्ख कुत्ता सूखी हड्डी को चबाते समय मुँह से निकले हुये खून को सूखी हड्डी से निकला हुआ समझ कर अपना ही खून चूस कर बड़ा खुश होता है;

जैसे बिच्छू या खटमल की शय्या कदापि सुखकर नहीं हो सकती, वैसे ही विषयी पुरुष भी कदापि सुखी नहीं हो सकते, वे सदा बेचैन बने रहते हैं। "दुःखी सदा को? विषयानुरागी।" ऐसा श्रीमत् शङ्कराचार्य भी कहते हैं; सच है, साँप के फेन के नीचे बैठा हुआ चूहा कब तक छाया का सुख मनावेगा? मेंढक, साँप द्वारा आधा निगले जाने पर भी जैसा वह मूर्ख मक्खियों के लिये मुँह खोलता है, वैसे ही कामी पुरुष भी अनेक रोगों से अधमरे होने पर भी विषय सेवन के लिये हाथ-पैर फैलाये ही हैं। गदही के लातों से नाक-मुँह-फूट जाने पर भी जैसे वह गदहा गदही की आशा नहीं छोड़ता, उसके पीछे पीछे ही दौड़ता है; वैसे ही दुर्दशा काम के कीटों की भी होती है। वे सब तरह से नष्ट-भ्रष्ट व दुखी होने पर भी अपनी कुबुद्धि को नहीं त्यागते और विषय के पीछे मारे मारे फिरते हैं। दाद को खुजलाने से वह कदापि शान्ति नहीं हो सकती, उसे वैसे ही छोड़ देने तथा स्नान व उपवास द्वारा शरीर की सफाई रखने ही से वह शान्त हो सकती है, वैसे ही काम के सेवन से काम की शान्ति कदापि नहीं हो सकती। ऐसा आज तक किसी ने न देखा और न सुना ही है। साँप को छेड़ने से नहीं किन्तु साँप से दूर रहने ही से जैसे हम बच सकते हैं; वैसे ही काम के सेवन से नहीं किन्तु काम से दूर रहने ही से काम की सच्ची शान्ति हो सकती है और हम भी पूर्ण शान्त व सुखी बन सकते हैं। यदि कोई नासारोगी सफेद मिट्टी के तेल को पानी समझ कर जलते हुए झोंपड़े पर डाले, तो कैसा उल्टा परिणाम होगा? क्या कभी ईंधन से अग्नि शान्त हो सकती है। कोई कहेगा, "हाँ हो सकती है, ढेर सी लकड़ी डाल देने से

आग बुझ सकती है।" हम कहते हैं, "अधिक विषय सेवन करने से फिर तुम भी अकाल में बुझ जाओगे!" एक शराबी ने ऐसा ही किया। एक दिन उसने खूब शराब पी ली। नतीजा यह हुआ कि एक ही घंटे में उसकी दुर्बल बनी हुई खोपड़ी नशे के मारे फट गई और वह मर गया। ययाति राजा ने अपने पुत्र की भी आयु ली और तमाम उम्र भर उसने विषय सेवन किया, परन्तु उसकी शान्ति नहीं हुई। अन्त में वह क्षयी बन गया, उसको क्षय हो गया। इसी कारण सन्त उपदेश करत हैं:—

[भजन ध्रुव-गज़ल की]

"विषयों से मन को तृप्त कराना नहीं अच्छा।
जलती अगिन को घी से बुझाना नहीं अच्छा॥ १॥
सुख भोगते जगत के सभी हैं ये नाशमान।
तृष्णा बढ़ा के जी को फँसाना नहीं अच्छा॥ २॥
'गच्छतीति* जगत्' है अन्त दुखःदायी।
रंग रंग के खेल देख लुभाना नहीं अच्छा॥ २॥
धन धाम इष्ट मित्र रूप यौवन पुत्र कलत्र।
हरगिज़ घमण्ड इनका करना नहीं अच्छा॥ ४॥
करोड़ों रुपय्या देके भी गतायु फिर मिलती नहीं।
विषय हेतु आयु को लुटाना नहीं अच्छा॥ ५॥
छिन छिन आयु नशत है कहे 'वामन' सावधान।
दुर्लभ नर तनु मुफ्त में गँवाना नहीं अच्छा॥ ६॥

अतएव, प्यारे भाइयो! जहाँ तक हो सके वहाँ तक मनुष्य को बेकाम बनाने वाले इस दुर्भर यानी कभी भी तृप्त न

*जाने वाला किंवा बदलने वाला जो सो जगत्।

होने वाले महापेटू व पापी काम से सदा दूर रहो। इसी में कल्याण हैं।

यच्च कामसुखं लोके यच्च दिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हतः षोड़शीं कलाम्॥

अर्थात्, निष्कामता में यानी विषय वैराग्य में जो सुख भरा हुआ है उसका सोलहवाँ हिस्सा भी सुख संसार के व स्वर्ग के समस्त विषयों में तथा दिव्य ऐश्वर्यादि में नहीं है। अतः इस महाशनो महापापात्मा काम रिपु को "भगवान के आज्ञानुसार" तुरन्त मार डालो, नहीं तो वह दुष्ट तुम्हें ही मार डालेगा! याद रक्खो।

(भजन)

अनारी मन काम नरक को मूल ॥धृ०॥

रङ्ग रूप में रह्यो लुभाना, भूल गयो हरिनाम दिवाना।
या यौवन का कौन ठिकाना, दो दिन में हो धूल ॥१॥

अमृत-भरे कलश बतलाये, धरि धरि के आनन्द मनावे।
चमड़े की थैली है मूरख, जापे रह्यो वड़ो फूल ॥२॥

जा मुख को चन्दा कर मानो, थूक लार वामें लिपटानो।
छी छी छी छी! तुमरी मति पर, विष्ठा में गयो भूल ॥३॥

कैसा भारी धोखा खाया, हाड़चाम पर मन ललचाया।
'वामन' इस पर गौर किया कुछ? यही काल को शूल ॥४॥

———

११—प्रकृति का स्वभाव

प्रकृति का स्वभाव अत्यन्त कठोर और दयालु है। वह अत्यन्त न्यायप्रिय है। न्याय में वह क्षमा नहीं करना जानती। सदाचारियों के लिये प्रकृति परम प्यारी माता है और दुराचारियों के लिये वह पूरी राक्षसी है। वह स्वयं राक्षसी कदापि नहीं है। वह परम दयालु जगत्माता है, केवल दुराचारियों ही को वह राक्षसी जैसी प्रतीत होती है। परन्तु दण्ड में भी हमें सुधारने का ही उसका पवित्र हेतु होता है। ठोकर खाने ही से मनुष्य सावधान होता है।

आज अत्यन्त वीर्यनाश के कारण तरुण समाज अत्यन्त नाशोन्मुख हो रहा है और दिन पर दिन रसातल को जा रहा है। चाहे तुम कितने ही अँधेरे में और कितने ही चालाकी से वीर्य-नाश करो, अपने को कितना ही सुरक्षित व बुद्धिमान् समझो और कुकर्मों को छिपाने की कैसी भी कोशिश करो, परन्तु वीर्यनाश होते ही मृत्यु तत्काल तुम्हारे द्वार पर आ डटती है और तुम्हारा इन्तज़ार करती है। प्रकृति माता अपने हाथ में डन्डा लिये तुम्हारी वह नीच कृति देखती है तथा प्रत्येक बूँद के लिये तुम्हारे मर्म स्थानों पर कठोर डन्डा प्रहार करती है। ज्यों ज्यों तुम वीर्यनाश करोगे त्यों त्यों वह तुम्हें मारते मारते बेदम व अधमरा कर डालेगी। तब भी यदि नहीं चेतोगे व सुधारोगे तब अन्त में तुम्हारा इन्तज़ार करती हुई मृत्यु की ओर तुम्हें सड़े फल की तरह फेंक देगी, तुम्हें उठा कर नरक-कुण्ड में बिठा देगी!

आज कितने ही तरुणों के बदन पर हम उन डंडों की चोटों के गहरे निशान प्रतिदिन देख रहे हैं। कितने ही हतभागी लोग महारोगियों की तरह खटिया पर पड़े पड़े तड़फड़ा रहे हैं। कोई गर्मी से पीड़ित है। कोई फिर भी, उन निशानों को लिये हुए समाज में इधर-उधर झूठे ही छाती निकाल कर ऐंठते हुए अकड़ कर घूम रहे हैं। कोई माला फेर रहे हैं और इधर नाड़ी भी टटोल रहे हैं, और मन में राम का नहीं किन्तु काम का जप कर रहे हैं। अब कहिये ऐसे लोगों की क्या गति होगी? बेचारों की "इतो भ्रष्टस्ततोभ्रष्टः" ऐसी ही त्रिशंकु की तरह दुर्गति होगी, और क्या? दम्भाचार में न दीन है न दुनिया ही है;

"वंचक भक्त कहाय राम के।
किंकर कंचन कोह काम के॥"

बहुत से बालक तो ऐसी दुर्गति को पहुँच गये हैं कि उन्हें भात तो क्या दूध तक नहीं पच सकता, पाखाना भी साफ नहीं होता। खाना तथा पाखाना में बड़ी दुर्दशा हो गई है। भोजन कर भी लिया तो पचता नहीं। इधर खाया और उधर निकल गया। यदि पचा भी तो उसका सार वीर्य शरीर में रहने नहीं पाता। रोज़ स्वप्नदोष अर्थात् धातुक्षय हुआ करता है फिर छिपे छिपे वैद्यों की दूकान ढूँढ़ते हैं! परन्तु उनको याद रहे कि वीर्यनाश करनेवाला यदि साक्षात् धन्वन्तरि ही क्यों न हो तथापि वह भी अपने को कदापि नहीं बचा सकता। फिर दूसरे वीर्यहीनों को वह कैसे बचा सकता है? आजकल के डाक्टर वैद्य क्या धन्वन्तरि से भी ज्यादा बढ़ गये हैं? हां लूटने मारने में वे अवश्य बढ़-चढ़ हुये हैं। किसी ने वैद्यों को "यमराज का भाई" कहा है, सो बहुत ही यथार्थ है। यम

तो केवल प्राण ही हर लेता है पर वैद्य प्राण और धन दोनों लूट लेते हैं। दवाओं से रोग "जड़" से अच्छे नहीं हो सकते। दवा से रोग थोड़ी देर के लिये दब सकते हैं सही, परन्तु कुछ अरसे के बाद वे दूसरी शक्ल में पैदा होते हैं। "मरज बढ़ता गया, ज्यों ज्यों दवा की" इसका यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि ज्यों ज्यों डाक्टरों व वैद्यों की संख्या बढ़ती जाती है त्यों त्यों रोग और रोगियों की भी संख्या बढ़ती जाती है और इस बात को कोई जानना चाहता हो, तो वह अखबारों में दवाओं के विज्ञापनों को देख सकता है। प्यारे मित्रो, विदेशी लोग इन विज्ञापनों को देख कर दिल में क्या सोचते होंगे ?

हम ही अपने डाक्टर हैं।

भाइयो ! लौटो ! प्रकृति माता की शरण में आओ। वह परम दयालु है। तुम्हारा ज़रूर सुधार करेगी। विश्वास रक्खो ! प्रकृति माता की दया बिना कोई एक घंटा भी नहीं जी सकता। नाक, कान, मुँह, मूत्र, त्वचा इत्यादि द्वारा, बल्कि रोम रोम से, वह हमारे भीतर का सम्पूर्ण ज़हर हरदम बाहर निकाल कर फेंकती रहती है और हमें चंगा किया करती है। अतः हमें चाहिये कि प्रकृति के "पञ्चामृत का अर्थात् शुद्ध हवा, प्रकाश, पानी, भूमि व आकाश (Space) इनका रोज़ यथेष्ट पान कर और कुकर्मों को त्याग कर सुकर्मों द्वारा अपना पुनरुद्धार कर लें। हमारा उद्धार हमारे ही हाथ में है। वस्तुतः हम अपने डाक्टर हैं, गुरु हैं।

पद—(राग—असावरी)

कर्मों का फल पाना होगा ॥धृ ॥
'क्यों न अरे तू चेत में आवे,
सभी ठाट तज जाना होगा।

विषय भोग से सभी तरह बच,
बचो न तो सड़ जाना होगा ॥ १ ॥
सुर-दुर्लभ-तनु भोगी श्वानवत्,
क्या अब पशु कहलाना होगा।
धर्माधर्म कछु नहिं मान्यो,
कर्म-दण्ड यहीं पाना होगा ॥ २ ॥
अन्त समय एरे मन मूरख!
जंगल तेरा ठिकाना होगा।
कुछ इस जग में कीर्ति कमा ले,
धर्महि साथ ले जाना होगा ॥ ३ ॥
भूलि गयो :कर्तव्य आपनो,
देख बहुत पछताना होगा ।
आंखें रहते अन्धा मत बन,
शुभ विवेक से तरना होगा ॥ ४ ॥
जैसा जैसा कर्म करेगा,
वैसा ही फल खाना होगा।
अब भी 'वामन' चेत में आजा,
नहिं तो दुर्गति पाना होगा॥ ५ ॥

"गतं न शोच्यं"

"बीती ताहि विसारी दे, आगे की सुधि लेई।"

सचमुच हमको अब ज़रूर सम्हलना होगा। जलते हुए मकान से बाहर निकल आने में ही बुद्धिमानी है; उसी में ज़िन्दगी है। यदि हम अपना कल्याण चाहते हैं तो महापुरुषों के सदुपदेशानुसार हमको तन-मन-धन से शीघ्रतया ज़रूर चलना होगा। माता पिता अथवा गुरु यदि अधर्ममयी आज्ञा करते हों

तो उनकी वह आज्ञा ध्रुव, प्रह्लाद, शुक, आदि की तरह कदापि न मानो ! भीष्मपितामह ने अपने ब्रह्मचर्य के भंग करने की गुरु की अनुचित आज्ञा बिलकुल नहीं मानी, तब गुरु शिष्यों में युद्ध छिड़ा। अन्त में परशुराम जी को उस महान् प्रतापी अखण्ड ब्रह्मचारी धर्मप्रतिज्ञ भीष्म के सामने हार माननी पड़ी। अहा ! क्या ही यह ब्रह्मचर्य का प्रताप है। हमको भी अपने ब्रह्मचर्य के पालन में अब ऐसा ही दृढ़प्रतिज्ञ होना चाहिये।

"धैर्य्य न टूटे पड़े चोट सौ घन की।
यही दशा होनी चहिये जिन मन की ॥"

सचमुच 'हृदय से चाहने वालों को जैसी बुराई सरल है, वैसी भलाई भी सरल है। अतएव मनुष्य को चाहिये कि वह अपने दुर्वृत मन को हठपूर्वक या विवेकपूर्वक विषय से हटावे। बुराई एकाएक दूर नहीं हो सकती, यह बात सच है परन्तु "पुरुषस्य प्रयत्नशीलस्य असाध्यं नास्ति।" पुरुषार्थी पुरुष के लिये संसार में कुछ भी असाध्य व अशक्य नहीं है। हृदय से उचित प्रयत्न करने पर सब कुछ सरल है। अभ्यास से असाध्य भी साध्य हो जाता है। बड़े बड़े अफीमची और शराबी भी अपनी मात्रा को थोड़ी थोड़ी घटाते घटाते अन्त में व्यसन-मुक्त हो गये हैं, इस बात को कभी न भूलो। वैसे ही हम भी सुधर सकते हैं।

१२—मन व इन्द्रियाँ

रहे शान्त जो युवा में, शान्त धीर वह वीर।
नष्ट हुए पर वीर्य के, को न वने गम्भीर?

सच्चा कुशल सारथी वही है जो उन्मत्त घोड़ों को अपने काबू में रखता है, उन्हें उच्छृङ्खल नहीं होने देता। वैसे ही सच्चा वीर पुरुष वही है जो कि युवावस्था में भी प्रबल इन्द्रियों को अपने अधीन रखता है; उन्हें स्वतंत्र व स्वेच्छाचारी नहीं होने देता। शत्रुओं पर और सम्पूर्ण राजाओं पर विजय प्राप्त करने वाला सच्चा शूर नहीं कहा जा सकता। सच्चा शूर वही है जो मन और इन्द्रियों का स्वामी है और मन तथा इन्द्रियों पर केवल महापुरुष ही अधिकार चला सकते हैं। और कोई मनुष्य यदि सदुपदेशों के अनुसार मन-क्रम-वचन से चले तो महापुरुष हो सकता है; इसमें कुछ भी कठिनता नहीं है। मैला कपड़ा जैसे पुनः साफ़ हो सकता है, वैसे ही विषय व दुर्व्यसन से गन्दा बना हुआ मन भी पुनः साफ हो सकता है। परन्तु अटल निश्चय व पूरी दृढ़ता होनी चाहिये। पवित्र मन माता, पिता, गुरु व मित्रों से भी अधिक उपकारी है, मन ही मनुष्य को नरक में से निकाल कर ऊँचे पद पर पहुँचाता है; मन ही सुख दुःख का असली कारण है; मन ही स्वर्ग व नरक, बंध व मोक्ष का प्रदाता है,—ऐसा भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का वचन है। अतः मन को इख्तियार में रक्खो। मन बड़ा दग़ाबाज़ है। मन के वायदे को कभी न मानो। "मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।" यह अटल सिद्धान्त जानो। मन को न बाँधोगे तो मन तुमको जहाँ चाहे वहाँ पटक देगा, यह निश्चय समझो। क्या आपको इसका

अनुभव नहीं है ? "आत्मोद्धार कैसे हो ?" इस पर सन्त कहते हैं—"मन की कथनी से उलटी रीति पर चलो—उलटी चाल चलो। मन का गुलाम सब का गुलाम है। वह पण्डित होने पर भी महामूर्ख है, बलवान होने पर भी महान दुर्बल और राजा होने पर भी पूरा दुखी, अभागा और भिखारी है।" मन का स्वामी ही सम्पूर्ण जगत् का स्वामी है, चाहे वह शरीर से भले ही दुर्बल हो। श्रीगोस्वामी जी कहते हैं:—

काम क्रोध मद लोभ की, जब लग मन में खान।
तुलसी पंडित मूरखो, दोनों एक समान ॥ १ ॥

अतः हमें चाहिये कि इस ग्रन्थ में दिये हुए सरल, श्रेष्ठ व अमूल्य नियमों द्वारा अपने मन को स्वाधीन कर ब्रह्मचर्य का सच्चा पालन करें तथा अपना सच्चा उद्धार कर लें।

१३—वीर्य की उत्पत्ति

रसाद्रक्तं ततो मांसं मांसान्मेदः प्रजायते।
मेदस्याऽस्थि ततो मज्जा मज्जायाः शुक्रसंभवः ॥

—श्रीसुश्रुताचार्य

मनुष्य जो कुछ भोजन करता है, वह प्रथम पेट में आकर पचने लगता है और उसका रस बनता है, उस रस का पाँच दिन तक पाचन होकर उससे रक्त पैदा होता है; रक्त का भी पांच दिन तक पाचन होकर और उससे मांस बनता है। पाचन की यह क्रिया एक सेकण्ड भी बन्द नहीं रहती। एक को पचा कर

दूसरा, दूसरे से तीसरा, तीसरे से चौथा ऐसा एक से एक सार पदार्थ पैदा हुआ करता है और प्रत्येक क्रिया में फजूल चीजें मल, मूत्र, पसीना, आँख, कान व नाक का मैल, नाखून, केशादि के रूप में बाहर निकल जाती हैं। इसी प्रकार पांच दिन के बाद मेदा से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से सप्तम सार पदार्थ "वीर्य" बनता है। फिर उसका पाचन नहीं हो सकता। यही "वीर्य फिर ओजस्" रूप में संपूर्ण शरीर में चमकता रहता है। स्त्री के इस सप्तम शुद्धातिशुद्ध सार पदार्थ को 'रज" कहते हैं। दोनों में भिन्नता होती है। वीर्य कांच की तरह चिकना और सफेद होता है और रज लाख की तरह लाल होता है। अस्तु इस प्रकार रस से लेकर वीर्य व रज तक छः धातुओं के पाचन करने में पांच दिन के हिसाब से पूरे ३० दिन व करीब ४ घन्टे लगते हैं, ऐसा आर्य-शास्त्रों का सिद्धान्त है।*

वह वीर्य वा रज कोई खास जगह में नहीं रहता, सम्पूर्ण शरीर ही इसका निवास स्थान है। बादाम या तिल में जैसे तेल, दूध में जैसे मक्खन, किसमिस व ईख में जैसी मिठास, काठ मे जैसी अग्नि किंवा फूल में अथवा चन्दन में जैसे सुगन्ध सर्वत्र कण-कण में भरी रहती है, उसी तरह वीर्य भी शरीर के प्रत्येक अणु परमाणु में भरा हुआ है। वीर्य का एक बूँद भी निकलना मानो अपने शरीर को नींबू की तरह निचोड़ ही

---

* धातो रसादौ मज्जान्ते प्रत्येकं क्रमतो रसः।
अहोरात्रात्स्वयं पंच सार्द्धं दण्डं च तिष्ठति ॥ इति भोज ॥

अर्थ--रस से मज्जान्त पर्यन्त प्रत्येक धातु पांच दिन-रात व डेढ़ घड़ी तक रहती है। (ढाई घड़ी का एक घन्टा होता है।)

डालना है। जैसे मथने से दूध के प्रत्येक परमाणु से मक्खन खींचा जाता है उसी प्रकार पूर्वोक्त नवधा मैथुन द्वारा शरीर के समस्त परमाणुओं से वीर्य खींचा जाता है। उस समय शरीर की तमाम नसें हिल जाती हैं, और शरीर के सभी अवयवों को रेल की तरह बड़ा भारी धक्का पहुँचता है।

हस्त-मैथुन* और प्रत्यक्ष मैथुन को छोड़ अन्य सप्त-मैथुनों द्वारा जो वीर्य शरीर से पसीज कर भीतर पतन होता है वह अंड-कोष में आ ठहरता है। यह पतित वीर्य पदच्युत व कैदी राजा की तरह हतबल व तेजहीन बन जाता है। वीर्य का पतन होते ही शरीर भी उसी क्षण निर्बल, निस्तेज, दु:खी व अल्पायु बन जाता है। जब तक तेल ऊपर चढ़ता है तभी तक दीपक की ज्योति प्रकाश फैलाती रहती है और ज्यों ज्यों तेल का नाश होता जाता है त्यों त्यों वह मन्द होते २ अन्त में बुझ जाती है। वैसे ही जब तक वीर्य ऊपर चढ़ता रहता है तभी तक शरीर में चमक दमक, उत्साह आनन्द व बल दिखाई देता है। और ज्यों ज्यों वह नीचे उतर कर नष्ट होने लगता है त्यों त्यों चमक-दमक, उत्साह, आनन्द बल और आयु सभी धीमे पड़ जाते हैं और अन्त में जीवन-दीप भी बुझ जाता है—जीवन का सर्वनाश होता है।

वीर्य के ऊपर चढ़ने ही को शास्त्र में ऊर्ध्व-रेता कहते हैं और पतन को अध:रेता। अखण्ड ब्रह्मचारी में और जिसका एक मरतबे भी वीर्य पतन हुआ हो—इन दोनों में बहुत ही फर्क

---

* पाठकों को स्मरण होगा कि "हस्तमैथुन" में हमने वीर्यनाश के सभी अप्राकृतिक साधन समाविष्ट किये हैं।

होता है। ऐसे पुरुष की ऊर्ध्व-रेता बनने की दैवी शक्ति बहुत कुछ नष्ट हो जाती है तथा उसका अधःपतन होता है। और यह बात, एक ही मरतबे के वीर्यनाश से विश्वामित्र का कितना भयङ्कर पतन हुआ, इस उदाहरण से भली भाँति सिद्ध होती है। वीर्य का पतन होते ही मनुष्य का भी पतन तत्काल होता है। उसकी संपूर्ण शक्तियों का ह्रास होने लगता है। ज्यों ज्यों वीर्य का नाश होगा त्यों त्यों जीवन का अवश्य नाश होगा, और ज्यों ज्यों वीर्य धारण किया जायगा त्यों त्यों जीवन का भी तारण होगा और मनुष्य बहुत उम्र तक जीवित रहेगा। ब्रह्मचर्य ही से मनुष्य सौ वर्ष तक जीवित रह सकता है और उसमें दैवी शक्तियाँ प्रगट हो सकती हैं।

अब यह जानना आवश्यक है कि कितने भोजन से कितना वीर्य पैदा होता है। इसका निश्चय वैज्ञानिकों ने इस प्रकार किया है कि एक मन यानी ऽ४० सेर खूराक से ऽ१ रुधिर बनता है और ऽ१ सेर रुधिर से दो तोला वीर्य बनता है, यानी "एक तोला वीर्य के बराबर चालीस तोला किंवा आध सेर खून" यह उनका सिद्धान्त है।

यदि नीरोग मनुष्य सेर भर खूराक रोज़ खावे तो ४० सेर खूराक ४० दिन में खावेगा। अतः यह सिद्ध हुआ कि चालीस दिन की कमाई दो तोला वीर्य है। इस हिसाब से ३० दिन की अर्थात् एक महीने की डेढ़ तोला हुई।

वीर्य का नाश

एक बार में मनुष्य का वीर्य डेढ़ तोला से कम क्या निकलता होगा, जो कि ३० दिन की कमाई है। अब ज़रा

विचारने की बात है फिर इतने कठोर परिश्रम से तीस दिन में प्राप्त होने वाली डेढ़ तोला अमूल्य व अतुल्य दौलत एक क्षण ही में फूंक डालना कितनी घोर मूर्खता है ? यह कितना घोर पतन है ? ऐसा पुरुष उस मूर्ख बागबान के समान है जो तन, मन, धन से दिन-रात परिश्रम कर फूलों का सुन्दर बाग़ तैयार करता है और पैदा हुए असंख्य फूलों का इत्र निकलवा कर उसे मोरियों में डालता व डलवाता है। आमदनी एक रुपये का, खर्च तीस रुपयों का, ऐसा मनुष्य जितना अन्धा, मूर्ख, पागल, और भिखारी है, उससे करोड़ गुना वह मनुष्य मूर्ख, पागल, अन्धा, भिखारी, रोगी, दुःखी, अभागा और काल का शिकार है जो एक महीने से कहीं ज्यादा की वीर्य-सम्पदा को एक दिन में खाक कर डालता है। एक मरतबे के वीर्यनाश से ही यदि मनुष्य की महा दुर्दशा होती है तब रोज़ दो दो तीन मरतबे अथवा चौथे, आठवें दिन वीर्यनाश करने वाले फिर अति शीघ्र नष्ट होंगे इसमें सन्देह ही क्या है ? अतः जिन्हें दीर्घायु व सुखी बनना है, जिन्हें महीने में एक मरतबे से अधिक अथवा श्रीमनु महाराज के आज्ञानुसार 'ऋतुकाल' का सच्चा अर्थ समझ कर महीने में दो मरतबे से अधिक तो, कभी भी वीर्यनाश न करना चाहिये। नहीं तो उल्टा अपना नाश हो जायगा, यह बात याद रक्खो।

ग्रीस (यूनान) के महाज्ञानी तत्ववेत्ता साक्रेटीज (सुकरात) से किसी ने पूछा कि "स्त्री प्रसंग कितने मरतबा करना चाहिये ?" उत्तर मिला कि "जन्म भर में एक बार !" फिर पूछा "यदि इतने से शान्ति न हुई तो ?" अच्छा फिर साल भर में एक बार करे।" उतने से भी मन न माने तो ? "अच्छा फिर

मास भर में एक बार करे।" इतने पर भी न रहा जाय तो?' अच्छा फिर माह में दो बार कर सकते हो, परन्तु जल्दी मृत्यु होगी?" "इतने पर भी शान्ति न मिली तो?" अच्छा तो, फिर ऐसा करे कि अपने कफन का सब सामान लाकर घर में पहले रख दे और फिर जैसा दिल में आवे वैसा किया करे। क्योंकि न मालूम किस समय उसकी मौत आ जावे और उसे खा डाले!"

रति-प्रसंग में अनेकों के अनेक मत हैं। चाहे कितना ही मत-भेद क्यों न हो परन्तु सार बात यह है कि वीर्य नाश जितना ही कम किया जायगा उतना ही स्वास्थ्य अधिक अच्छा होगा और मनुष्य दीर्घायु रहेगा, यह मत सभी को मान्य है। जितना ही अधिक विषय का सेवन किया जाता है उतना ही मन अधिक अशान्त, मलीन, पतित व दुःखी हो जाता है। वह तब ही शान्त हो सकता है जब वह या तो धर्म के अथवा प्रकृति के नियमानुसार चले किंवा मिट्टी में मिल जाय!

सब के सब ब्रह्मचारी

कोई कह सकता है "सभी लोग ब्रह्मचारी बन जायँ तो फिर सृष्टि चलेगी कैसे?" हम कहते हैं—मित्रो! सृष्टि चलाने की फिक्र आप न करें। सृष्टि का चलाने वाला निराला ही है। केवल आप अपनी ही फिक्र करो और विषय के कारण अकाल में नष्ट-भ्रष्ट न बनो! ब्रह्मचर्य से सृष्टि नष्ट तो नहीं किन्तु मुक्ति अवश्यमेव हो सकती है। क्योंकि ब्रह्मचर्य ही आत्मोद्धार का तथा विश्वोद्धार का सच्चा रहस्य है। अखण्ड वीर्य धारण तथा शास्त्रोक्त विषय सेवन का नाम ही ब्रह्मचर्य है। वस्तुतः ब्रह्मचर्य

से सृष्टि नष्ट होगी' ऐसा शंका करना ही व्यर्थ व मूर्खतापूर्ण है। प्रकृति शान्त होते हुये भी 'अनन्त' है, बस इसी एक वाक्य में इस प्रश्न का मुँह-तोड़ उत्तर है।" हमारे ब्रह्मचारी होने से अनन्त अर्थात् अन्त-रहित प्रकृति का कदापि अन्त नहीं हो सकता, यह बात हमें कभी न भूलनी चाहिये। अतः मित्रो! प्रथम अपने ही उद्धार की कोशिश करो। क्योंकि आत्मोद्धार ही लोकोद्धार है। यदि ऐसा न करोगे तो तुम्हारी चमगीदड़ की भांति उल्टी स्थिति होगी, निश्चय जानो।

१४—गृहस्थी में ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य समाप्याय गृहधर्म समाचरेत्।
ऋणत्रयविमुक्त्यर्थं धर्मेणोत्पादयेत् प्रजाम्॥ १॥

ब्रह्मचर्य की अवस्था पूर्ण होने के बाद पचीस वर्ष की युवावस्था में गृहस्थ धर्म को स्वीकार करे और ऋणत्रय विमुक्त्यर्थ (देव-ऋण, ऋषि-ऋण व पितृ-ऋण इनसे छुटकारा पाने के हेतु) धर्म की विधि से सुप्रजा निर्माण करे न कि कुप्रजा।

शास्त्रों में हमारे आचार्यों ने प्रकृति के नियमानुसार ब्रह्मचर्य के नियम पहले ही से बाँध रक्खे हैं प्रकृति के नियमों के तोड़ने से किसी का भला नहीं हो सकता है। यदि उन नियमों के अनुसार चले तो मनुष्य स्त्री के रहते हुए भी ब्रह्मचारी हो सकता है। अखण्ड ब्रह्मचारी में और गृहस्थ ब्रह्मचारी में यद्यपि बहुत फर्क होता है, तब भी धर्म-नियम के अनुसार चलने वाला गृहस्थ ब्रह्मचारी भी महान् तेजस्वी, ओजस्वी, यशस्वी, मनस्वी अर्थात्

मनोनिग्रही व सामर्थ्य-सम्पन्न होता है। जिस स्थान में सच्चा ब्रह्मचारी पहुँच सकता है उसी स्थान में सच्चा गृहस्थ भी जा सकता है। परन्तु आज सच्चे गृहस्थ ब्रह्मचारी भारत में कितने होंगे? वहुत ही कम। यह नितान्त सत्य है कि सच्चे गृहस्थ ब्रह्मचारी के न होने से ही भारत गारत हो रहा है, घर घर में कुसन्तान फैल गई है, जो कि १२ वर्ष की उम्र के वाद ही अपने ब्रह्मचर्य का सत्यानाश करने में प्रवृत्त होती है। स्वयं माता-पिता ही अपने कन्या-पुत्रों के ब्रह्मचर्य्य के नाश का वाल विवाह द्वारा खुल्लम खुल्ला यथेष्ठ प्रबन्ध कर रहे हैं। भला ऐसे नादानों से खुद उन्हीं की नहीं, तो देश की भलाई की आशा कैसे की जा सकती है? जो प्रकृति के नियमों को पैरों के तले कुचलता है, उसे प्रकृति भी कठोरता से कुचल डालती है। वहुत से विवाहित पुरुषों का ख्याल है कि अपनी धर्मपत्नी के साथ महीने में चाहे जव, हफ्ते में कोई भी दिन और रात में चाहे जितने मरतवे, कितने ही काल तक, विषयोपभोग करना विलकुल शास्त्र-संगत और ईश्वरीय आज्ञा के अनुसार है, इसमें कुछ भी पाप वा अधर्म नहीं है और न उसमें कुछ हानि ही होती है। परन्तु यह ख्याल अत्यन्त ग़लत और महा नाशकारी है। भाइयो! जरा प्रकृति की ओर तो देखो? तथा पशुओं की अपेक्षा मनुष्य कितना वलहीन है? तथा पशुओं की जननेन्द्रिय-सामर्थ्य कितनी अल्प व नियमित है? इस पर से मनुष्यों को, जो कि घोड़ा, बैल, हाथी, सिंहादिकों से कम शारीरिक समर्थ्य रखता है, कितना अत्यल्प व अत्यन्त नियमित विषय सेवन करना चाहिये, इसका आप ही हिसाव लगाइये! सच कहा जाय तो मनमानी विषय सेवन करने वाला पशुओं से भी गया बीता

है। ऋषियों का सिद्धान्त है कि:—

ऋतावृतौ स्वदारेषु संगतिर्या विधानतः।
ब्रह्मचर्यं तदेवोक्तं गृहस्थाश्रमवासिनाम् ॥
—श्रीयाज्ञवल्क्य

ऋतुकाल में अपनी स्त्री से (धर्मपत्नी से) विधियुक्त अर्थात् शास्त्राज्ञानुसार केवल सन्तान के हेतु समागम करने वाला पुरुष, गृहास्थाश्रम में रहते हुए भी, ब्रह्मचारी ही है। 'सन्तानार्थं च मैथुनम्' यह स्पष्ट व सख्त शास्त्राज्ञा है, याद रक्खो। श्रीमनु महाराज कहते हैं—"मास में ऋतुकाल में केवल दो ही रात्रि में जो धर्म-शास्त्राज्ञानुसार स्त्री-सेवन करता है वह धर्मात्मा पुरुष स्त्री रहते भी ब्रह्मचारी है।"

इसमें का "ऋतुकाल*" यह शब्द अत्यन्त महत्व का है। ऋतुकाल का मतलब स्त्री के रजोदर्शन काल का चौथा ही दिन नहीं है उस दिन यदि शिवरात्रि एकादशी अथवा नवरात्र आया

---

* ऋतुकाल का सच्चा अर्थ जानना हो और घर में "हीरे" निर्माण करने हो तो लेखक की "मन-वांच्छित सन्तति" नामक अत्यन्त महत्व पूर्ण करीब ४०० पृष्ठों की मौलिक किताब ज़रूर पढ़ो, मनन करो व आचरण में लाओ। इसमें एक एक नियम लाख लाख रुपयों का है। किताब हृदय में ही रखने योग्य है। एक हजार आर्डर्स आने पर छपवाना शुरू कर देंगे। मूल्य दो रुपया रहेगा। किताब में लगभग सात आठ सुन्दर चित्र भी रहेंगे।

आर्डर भेजने का मुख्य पताः—
मैनेजर, राष्ट्रोद्धार कार्यालय,
वड़ोदा (BARODA)

हो तो ? अथवा घर में ही कोई मर गया तो ? क्या उस दिन कामरिपुचरितार्थ करना ही होगा ? नहीं, कदापि नहीं ! वैसा करना पूर्ण अधर्म व महापाप होगा।

बस, इससे अधिक हम यहाँ पर इस बात का ज़िक्र नहीं करना चाहते। विष भी यदि डाक्टर की राय से खाले तो वह भी अमृत के तुल्य फल देता है, वैसे ही अपनी स्त्री का सेवन भी यदि धर्म-शास्त्रानुसार सुतिथि, सुनक्षत्र का विचार कर, प्रमाण में करे तो वह भी परम कल्याणकारी होता है। 'अ-प्रमाण' में निस्संदेह नाश है। प्रमाण से लेने पर विष भी रोगियों के लिये अमृत बन जाता है। कुसमय पर बीज बोने वाला किसान डूब जाता है। ठीक यही न्याय अपनी स्त्री के सेवन में समझ लीजिये। याद रक्खो, धर्मानुकूल चलने ही से हम गृहस्थी में भी, ब्रह्मचारी बन सकते हैं और घर में जैसे चाहे वैसे शूर, वीर श्रेष्ठ पुत्र-पुत्रियां उत्पन्न कर सकते हैं। अन्यथा पर-दारा गमन न करने पर भी, मनुष्य व्यभिचारी पद को प्राप्त होता है और उसकी सब तरह से दुर्गति होती है।

धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः।
श्रीप्राणधनदारेभ्योः क्षिप्रं स परिहीयते॥

जो धर्मतत्व का परित्याग करके, इन्द्रिय-वश हो स्वेच्छाचार अर्थात् अपनी मनमानी करता है, शीघ्र ही, धन, प्राण, स्त्री पुत्रादि सभी नष्ट होकर, उसकी महान दुर्गति होती है। और जो धर्मतत्वानुसार चलता है, उसका देखते ही देखते सब तरह से उत्कर्ष होता है और अन्त में सद्गति होती है। "तस्मात्सर्व-प्रयत्नेन धर्मं शुक्रं च रक्षयेत् !" इसलिये सर्व प्रकार से प्रयत्न

पूर्वक धर्म व ब्रह्मचर्य की रक्षा कीजिये क्योंकि धर्म ही जीवन है और अधर्म ही मृत्यु है। तथा ब्रह्मचर्य ही जीवन है और वीर्यनाश ही मृत्यु है।

१५—बाल-विवाह

बाल-विवाह-यह प्रत्यक्ष काल-विवाह ही है। यह पूर्णतया ब्रह्मचर्या का नाशक है। बाल-विवाह सर्वथा धर्म-विरुद्ध व अप्राकृतिक है। तथा वेद शास्त्र के प्रतिकूल* है। प्रकृति के नियमानुसार ही धर्मशास्त्र में नियम है। बाल-विवाह प्रकृति एवं धर्म के विरुद्ध कैसा है सो अब सुन लीजिए—

(१) जो पेड़ जल्दी बढ़ते, जल्दी फूलते-फलते हैं। (जैसे केला, पपीता, रेंड इत्यादि) वे उतने ही जल्दी नष्ट भी होते हैं। वैसे ही जो बालक बालिकायें जल्दी ब्याही जाती हैं, जल्दी ऋतु मती होती हैं, केवल ऋतु प्राप्त होना यही स्त्री की युवावस्था का

---

*वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत॥

सब से श्रेष्ठ स्मृतिकार साक्षात् वेदमूर्ति मनु जी कहते हैं--जब तक लड़का तीन दो वा एक वेद पुर्ण न सीख ले और कम से कम २५ वर्ष तक अखंड ब्रह्मचर्य व्रत पालने कर अपक को गृहस्थी चलाने के लिये पुर्ण समर्थ न बना ले तब तक अपनी शादी कदापि न करे, यही वेद की आज्ञा है। स्त्रियों के लिये भी ऐसी ही आज्ञा है। इसके लिये प्रमाणः--

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येण अश्वो घासं जिगीर्षति॥

लक्षण नहीं है। दुध-मुँहे दाँत को इख चूसने के लायक समझना घोर मूर्खता है। ऋतुकाल का सच्चा अर्थ समझो! कम से कम गर्भाधान के समय की आयु १६ वर्ष की होनी चाहिए और पुरुष की २५ वर्ष की और जो जल्दी, बच्चे वाली होती हैं वे बहुत जल्द रोगग्रस्त हो मृत्यु को प्राप्त होती हैं। प्रत्यक्ष उनकी ही यह हालत है, तब फिर उनके सन्तान की कौन कहे? "बाप से बेटे सवाई" जल्दी मरते हैं। तदनन्तर माता पिता रोते हैं और अपने ही हाथ से अपने कन्या-पुत्रों को चिता पर लिटा कर फूँकते हैं और अपना काला मुँह लेकर घर वापस आते हैं। वाह रे प्रेम।

(२) जो पेड़ जल्दी नहीं बढ़ते (जैसे आम, इमली, अमरूद इत्यादि) और जल्दी फूलते-फलते नहीं वे जल्दी मरते भी नहीं। वैसे ही जो बालक बालिकायें ज्यादा उम्र में ब्याही जाती हैं और गर्भाधान के समय स्त्री की १६ व पुरुष की २५ वर्ष की आयु होती हैं और जो धर्म-नियमों के अनुसार चलते हैं, वे निस्सन्देह सौ वर्ष तक जीवित रहते हैं, ऐसा भीष्म-पितामह का सिद्धान्त है। परन्तु अकाल ही में माता-पिता बने हुए अकाल ही में यमपुर सिधारते हैं। "अधर्मज्ञा दुराचारास्ते भवन्तिगतायुषः।"

—श्रीभीष्म।

(३) घास की अग्नि जैसी जल्दी बढ़ती है वैसी ही जल्दी बुझ भी जाती है और खैर, आम, इमली की अग्नि जल्दी नहीं बढ़ती और इस कारण जल्दी बुझती भी नहीं ; "जो जल्दी बढ़ता है सो जल्दी गिरता भी है" यही प्रकृति का नियम है।

(४) आम को जब बौर आती है तो उसमें से बहुत कुछ नष्ट हो जाती है। फिर छोटे छोटे फल (अम्बिया) लगते हैं उनमें से

भी बहुत नष्ट होते हैं। फिर आंवले जैसे बड़े होते हैं तिसमें से भी बहुत कुछ नष्ट होते हैं। जब वे और भी पुष्ट होते हैं तब कहीं वे आखिर तक उस पेड़ पर स्थिर रह सकते हैं। वैसे ही जो बालक-बालिकायें बचपन में ही ब्याहे जाते हैं उनमें से बहुत मर जाते हैं, जिसका अनुभव आज प्रत्यक्ष हम आप कर रहे हैं, और जो पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन कर गृस्थाश्रम में विधियुक्त प्रवेश करते हैं वे ही केवल सौ वर्ष तक जीवित रह कर जीवन का पूर्ण आनन्द लूटते हैं।

(५) कच्ची कलियाँ तोड़ने से पुष्पों की महक मारी जाती है। उनमें सुगन्धि नहीं मिल सकती। कच्चे फल, रस हीन कसैले और रोगकारी होते हैं। कच्चा भोजन पेट में अनेक रोग पैदा करता है। वैसे ही कच्चेपन में विवाह करने और वीर्य को नष्ट करने से अर्थात अ-पक्व वीर्य पात से नपुँसकता, दुर्बलता, क्षय, प्रमेहादि भीषण रोग उत्पन्न होते हैं, जो उस व्यक्ति को अकाल ही में मृत्यु की गोद में पहुँचाने में पूर्ण सहायक बनते हैं।

(६) कच्चा बीज कोई भी किसान खेत में नहीं बो सकता, क्योंकि उसमें खेती का और बीजवाले माली दोनों का नाश होता है। किसान लोग खेत में बोने वाले बीज को प्राण के तुल्य सम्भाल कर रखते हैं। यदि कभी भूखे भी रहना पड़े तो भी कुछ परवाह नहीं करते, परन्तु उस बीज को ऋतुकाल (फसल) तक हाथ नहीं लगाते। वैसे ही मनुष्य को भी अपने वीर्यरूपी बीज को २५ वर्ष तक पूरे तौर से सम्भालना चाहिये और नव-मैथुन से सर्वथा बचा रहना चाहिये। "जैसा बोओगे वैसा ही काटोगे" यह ध्यान में रक्खो।

(७) कच्चे भुट्टों में या कच्चे काठ में घुन जल्दी लग जाता है और पक्के में बिलकुल नहीं लगता। वैसे ही बचपन में वीर्य को नष्ट करने वाले, जब गाँव में कोई रोग फैलता है तब सब से पहले काल के शिकार बनते हैं; वैसे ही २५ वर्ष वाले ब्रह्मचारी शिकार नहीं बनते। यथार्थ में ब्रह्मचर्य ही जीवन है और वीर्यनाश ही मृत्यु है।

(८) भट्ठी में कम पका हुआ घड़ा (सेवर घड़ा) पानी के संयोग से बहुत जल्दी टूट जाता है, परन्तु पक्का नहीं टूटता। वैसे ही कच्चे वीर्य का पुरुष स्त्री संयोग से अथवा अनुचित वीर्यपात से जल्दी नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

प्रकृति के इन आठ प्रमाणों से आपने अब भली भाँति समझ लिया होगा कि "बाल-विवाह प्रत्यक्ष काल-विवाह है।" "विद्यार्थी ब्रह्मचारी स्यात्" अर्थात सच्चा विद्यार्थी वही है जो ब्रह्मचारी है। वह किसी बात में असफल नहीं होता क्योंकि उसकी बुद्धि, प्रतिभा, विचार-शक्ति, स्मरणशक्ति आदि सभी शक्तियां तीव्र होती हैं। वीर्यभ्रष्ट विद्यार्थी ज्ञान-प्राप्ति में पूर्ण असफल सिद्ध होता है। हा! जिस देश में विद्यार्थी-अवस्था ही में—बचपन ही में—ब्रह्मचर्य का नाश किया जाता है; लड़के को तैरना सीखने के पहले ही जो माता पिता उस बेचारे के गले में स्त्री रूपी पत्थर बांधकर उसे दुस्तर संसार-सागर में ढकेल देते हैं, उस देश की उन्नति कैसे हो सकती है?

कन्यां यच्छति वृद्धाय नीचाय धनलिप्सया।
कुरूपाय कुशीलाय स प्रेतो जायते नरः॥ १॥

श्री भगवान स्कन्ध कहते हैं:--"जो पुरुष धन की अथवा दहेज के लालच से अपनी अबोध कन्या किसी वृद्ध को—खूसट बूढ़े को, नीच को, दुराचारी, व्यभिचारी को, कुरूप को अर्थात् अन्धे, लँगड़े, लूले, कुवड़े, रोगी, कोढ़ी, अपाहिज—इनमें से किसी को अथवा दुर्गुणी, दुर्व्यसनी को यदि व्याह दे तो वह मरने के बाद नीच पिशाच योनि में बराबर जन्म लेता है और अपने नीच कर्मों के नीच फल भोगता है।

बाल-विवाह तथा वृद्ध-विवाह आदि दुष्ट-विवाहों की कुप्रथायें उठा देने ही से देश में ब्रह्मचारी बालक-बालिकायें उत्पन्न हो सकती हैं और उसकी बागडोर एक मात्र माता पिताओं ही के हाथ में है। अतएव ऐ माता-पिताओ! अब विवेक से काम लो। लकीर के फकीर मत बनो। धर्म के तथा प्रकृति के नियमानुसार चल कर पुण्य के भागी बनो और कुल तथा देश का उद्धार करो।

१६—वीर्य का प्रचण्ड प्रताप

समुद्रतरणे यद्वत् उपायो नौः प्रकीर्तिता।
संसार तरणे तद्वत ब्रह्मचर्यं प्रकीर्तितम्॥ १॥

"जैसे समुद्र के पार जाने के लिये नौका ही श्रेष्ठ साधन है वैसे ही इस भव-सागर से पार जाने के लिये अर्थात सब दुखों से मुक्त होने के लिये ब्रह्मचर्य ही उत्कृष्ट साधन है।" क्योंकि 'ब्रह्मचारी न काचन आर्तिमाच्छति।" अर्थात "ब्रह्मचर्य ही से सम्पूर्ण सुखों की उत्पत्ति है।" ऐसी श्रुति है।

सम्पूर्ण विश्व में प्राणिमात्र में जो कुछ जीवन-कला दिखाई देती है वह सब ब्रह्मचर्य ही का प्रताप है। जीवन-कला में सौंदर्य,

तेज, आनन्द, उत्साह, सामर्थ्य, असामान्यता, मोहकता अर्थात् आकर्षकत्व व सजीवत्व आदि अनेकानेक उच्चबातों का समावेश होता है। जैसे हाथी के पैर में सभी जीवों के पैर समाते हैं, वैसे ही एक ब्रह्मचर्य ही में सब कुछ आ जाता है। 'एकहि साधे सब सधे' ऐसा शक्ति-सम्पन्न साधन यदि विश्व में कोई है तो वह एक मात्र ब्रह्मचर्य ही है। अतः प्रयत्न पूर्वक एकमात्र ब्रह्मचर्य ही को सम्हालो। क्योंकि ब्रह्मचर्य ही सम्पूर्ण शक्तियों का खज़ाना है।

जो ब्रह्मचारी है उसमें दैवी तेज कूट कूट कर भरा रहता है। आपकी आंखों में जो इतनी ज्योति है वह किसका प्रभाव है? गाल पर गुलाबी छटा, मुख पर कमनीयता, छाती में अकड़, चाल में फौजी ढब आदि यह किसका प्रताप है? क्लास में प्रथम नम्बर रहना, खेल में अग्रगण्य रहना, कुश्ती में किसी से हार न जाना, बड़े भारी बोझ को सहज ही में उठा लेना, हाथ में लिया हुआ काम पूरा करना, एक शब्द ही से दूसरों को वश में कर लेना, बड़ी बड़ी सभाओं में खड़े होते ही अपनी सुरीली तथा प्रभावशाली आवाज़ से बड़े बड़े विद्वानों की अच्छी अच्छी युक्तियाँ अपनी वाक्धारा के प्रभाव में बहा देना, अत्यन्त निर्भयता, साहस तथा दृढ़ निश्चय का होना—यह सब किसका प्रताप है? निश्चय जानिए यह सब केवल ब्रह्मचर्य ही का अद्भुत प्रताप है! कुमार अवस्था में सम्हल कर चलने के ही ये सब चमत्कार हैं।

ये तपश्च तपस्यन्ति कौमारा ब्रह्मचारिणः।
विद्यावेदव्रतस्नाता दुर्गाण्यपि तरन्ति ते ॥ १॥

जो कुमार ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य रूपी तप*के तपस्वी हैं अ जिन्होंने सुविद्या (वेद) से अपने को पवित्र बना लिया है वे ही केवल अद्‍भुत और कठिन से कठिन कर्मों को कर सकते हैं और इस दुस्तर संसार से तर सकते हैं।"

ब्रह्मचारी पुरुष सर्वत्र दिग्विजयी होते हैं, उन्हें कभी अपयश नहीं मिलता। सम्पूर्ण अपयश का मूल एक मात्र वीर्य-हीनता ही है! वीर अभिमन्यु का नाश क्यों हुआ ? वह समर में जाने के पहले भारत-वंश विस्तार का "बीज" आरोपण करके गया था। पृथ्वीराज क्यों पकड़ा वा मारा गया ? कहते हैं युद्ध में जाते समय कमर उसकी स्त्री ने कस दी थी! जो वीर्य को नष्ट करता है, वह हर जगह नष्ट किया जाता है और जो वीर्य-को धारता है वही सब जगह विजयी होता है। सच्चा ब्रह्मचारी काल का भी काल होता है! दुश्मन भी उसके सामने कान्तिहीन पड़ जाते हैं। "आत्मिक तेज" जिसको अंग्रेज़ी में परसनल म्याग्नेटिज़म (Personal Magnetism) अथवा तेजोवल यानी परसनल ओरा (Personal Aura) कहते हैं, ब्रह्मचारी में कूट कूट कर भरा रहता है, जिसके प्रताप से लोग उस पर अनायास लट्टू हो जाते हैं। वह जो कुछ कहता है, वही प्रिय व सत्य मालूम देने लगता है और सब के चित्त में उसके लिये पूज्य भाव पैदा होता है।

एक धनी अच्छे अच्छे कपड़े पहिनता है; चेहरा भी उसका सफ़ेद होता है, पर उसके तरफ देखते ही हमारा कुछ भी अपराध न करने पर भी, हम में एकाएक उसके लिये तिरस्कार बुद्धि

*"ब्रह्मचर्यं परंतपः।" ब्रह्मचर्य ही सबसे श्रेष्ठ तपश्चर्या है।

जागृति होती है। इसका क्या कारण है? इसका एकमात्र कारण उसकी वीर्यहीनता ही है। दूसरा एक कोई गरीब का नवयुवक सतेज बालक होता है, परन्तु उसे देखते ही मनुष्य के चित्त में उसके लिए एकाएक स्नेहभाव जागृत होता है। यह किसका प्रताप है? यह सब वीर्यपुष्टता वा ब्रह्मचर्य का ही दिव्य प्रताप है। सारांश शुक्रसंचय ही स्नेह का एकमात्र आदि कारण है यह बात अक्षर अक्षर सत्य है।

स्वामी विवेकानन्द जब शिकागो (अमेरिका) की प्रचण्ड विद्वत्सभा में खड़े हुये, तब वहाँ के समस्त विद्वानों को उन्होंने केवल पांच ही मिनट में कठपुतलियों की तरह मुग्ध कर लिया! उनकी अच्छी अच्छी युक्तियों को अपनी वाक्यशक्ति प्रवाह में क्षण ही में बहा दिया और लोगों को अपना पूर्ण वा स्थायी भक्त बना लिया। यह किसका प्रताप है? यह केवल ब्रह्मतेज ही का प्रताप है, जो कि एकमात्र ब्रह्मचर्य ही से प्राप्त हो सकता है और अन्य किसी से नहीं। एक विद्वान आता है, तीन घंटे व्याख्यान देता है और लोगों को अपनी वाक्सामर्थ्य से हिला छोड़ता है, पर लोग घर पर जाते ही वह सब भूल जाते हैं। ऐसा क्यों? यह सब वीर्यहीनता के ही बदौलत! दूसरा एक ऐसा ही मामूली मनुष्य आता है, दो-चार ही शब्द सुनाता है, परन्तु वे ही दो चार शब्द मनुष्य आखीर दम तक नहीं भूलता। यह किसका प्रताप हैं? यह सब आत्मतेज का अर्थात वीर्यवत्ता का प्रताप है! वीर्य-भ्रष्ट पुरुष कभी आत्मबली नहीं हो सकता और न वह स्थायी प्रभाव ही डाल सकता है, चाहे वह फिर जटा बढ़ाए हो, चाहे मूंड मुंडाये हो अथवा चारों वेदों का ज्ञाता हो! कहा है:—एकतश्चतुरो

वेद: ब्रह्मचर्य तथैकतः ।" एक तरफ चारों वेदों का पुण्य और दूसरी तरफ ब्रह्मचर्य का पुण्य, दोनों में ब्रह्मचर्य ही का पुण्य विशेष है।

ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही श्री भीष्मपितामह के सामने उनके महान् प्रतापी गुरु परशुराम जी को हार माननी पड़ा। इतना ही नहीं, किन्तु श्रीकृष्ण भगवान को भी उनके सामने अपना प्रण भूलकर आखीर में झुक ही जाना पड़ा। अहा! कहते रोवें खड़े हो जाते हैं। श्री हनुमान जी ने एक ही घूंसे से इतने बड़े भारी प्रतापी रावण को वेहोश कर दिया और उसके मुख से खून वहाया। एक ही उड़ान में समुद्र को लांघना, बड़े बड़े पर्वतों का सहज ही में उठा ले आना और काल के भी मुंह में थप्पड़ लगाना यह किसका सामर्थ्य है? यह सब अखण्ड ब्रह्मचर्य का ही सामर्थ्य है? ब्रह्मचर्य से मनुष्य में निस्संशय अद्वितीय ब्रह्मतेज प्रकट होता है, जिसके कारण वह बड़े बड़े अद्भुत कार्य बड़ी आसानी से कर दिखाता है। आज तक जो कुछ बड़े बड़े धार्मिक व सामाजिक परिवर्त्तन हुए हैं, वे सब ब्रह्मचारियों ही के द्वारा अथवा ब्रह्मचर्य ही के बल पर हुए हैं।

वीर्यहीनता के कारण आज हम लोगों को अपने पूर्वजों की अद्भुत शक्तियों में भी सन्देह प्राप्त हो रहा है। क्यों न हो! हमारे ही सौ वर्ष तक जीवित रहने का यदि हमें सन्देह है तो फिर ईश्वरीय शक्तियों के लिये सन्देह प्राप्त होना स्वाभाविक बात है! पुष्पक विमान के लिये भी तो हमें पहले ऐसा ही सन्देह था। परन्तु आज जब प्रत्यक्ष विमानों को देख रहे हैं तब चुप मार कर सिर हिला कर कहने लगे कि "होगा भाई, ये लोग यन्त्र से चलाते हैं परन्तु

हमारे पूर्वज विमानों को मंत्र से भी चलाते रहे होंगे !" श्री भीष्म-पितामह श्रीपरशुराम जी और ययातिपुत्र, इन्होंने अपने पिताओं के लिए और अनेकों ऋषि-कुमारों ने केवल परोपकारार्थ—दूसरे के लिए ब्रह्मचर्य को धारण किया था। परन्तु आज हमारी ऐसी स्थिति हो गई है कि हम खुद अपने ही उपकार के लिये ब्रह्मचर्य को नहीं पाल सकते ! भला इससे बढ़कर हमारे 'आत्मिक पतन' का और सुस्पष्ट व पुष्ट प्रमाण दूसरा कौन सा हो सकता है। निर्वीर्य पुरुष को सभी बातें असम्भव सी जान पड़ती हैं। फलतः ब्रह्मचारी पुरुष के लिये संसार में तो क्या त्रिभुवन में भी कोई बात असम्भव व अप्राप्य नहीं। श्री भगवान् शंकर कहते हैं—

सिद्धे विन्दौ महायत्ने किं न सिद्ध्यति भूतले !
यस्य प्रसादान्महिमा ममाप्ये तादृशो भवेत् ॥ १ ॥

अर्थात्—"महान् परिश्रम पूर्वक विन्दु को साधनेवाले अखण्ड ब्रह्मचारी के लिए त्रिभुवन में भी ऐसी कोई वस्तु नहीं है, जो असम्भव व असाध्य हो। ब्रह्मचर्य के प्रताप से मनुष्य मेरे ही तुल्य अर्थात् ईश्वर तुल्य हो सर्वत्र वन्दनीय व पूजनीय बन जाता है।"

वस हो गया। इससे बढ़कर ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन करना मानवी शक्ति के बाहर है। ब्रह्मचर्य की महिमा अपरंपार है। केवल सच्चे ब्रह्मचारी ही ब्रह्मचर्य की अद्भुत महिमा का अनुभव कर सकते हैं।

अतः भ्रातृ-भगनी-मित्रगण ! तुम भी ब्रह्मचर्य का शक्ति भर पालन कर उसकी प्रचण्ड शक्ति की दिव्य छटा अनुभूत करो। यद्यपि तुम्हारे हाथ से आज तक बहुत कुछ अपराध

हुए हैं, तो भी कुछ हरज नहीं। उन्हें भूल जाओ। 'ब्रह्मचर्य' प्रतिष्ठायाँ वीर्य लाभः।" यह कपिलमहामुनि का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार आज भी हम फिर से ब्रह्मचारी बन सकते हैं और तन-मन-धन से वीर्यधारण कर अपना तथा देश का पुनरुद्धार कर सकते हैं। क्योंकि "वीर्यधारणं ब्रह्मचर्यम्" वीर्यधारण का नाम ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य में सच्ची शक्ति है और शक्ति में ही सच्ची मुक्ति भी है।

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—"सच्चे दिल से मेरी शरण आने से बड़े बड़े पापात्मा भी पुण्यात्मा व महात्मा हो गये हैं। तुम भी मेरी शरण आओ। मुझे सर्वत्र व्यापमान देखो। प्रत्येक स्त्री में मातृभाव रखो। स्त्री मात्र में मेरा ही रूप देखो। मैं तुम्हारा अवश्य अवश्य उद्धार करूँगा।"

अहह ! भगवान की इस आज्ञानुसार यदि हम छः ही मास तक ब्रह्मचर्य का मन-क्रम-वचन से सच्चा पालन करके देखें तो अपना बहुत ही रंग बदला हुआ हमें प्रत्यक्ष जान पड़ेगा, चेहरे की पाण्डुरता नष्ट हो, चेहरा तेजस्वी बन जायगा। आंखों की ज्योति बढ़ जायगी; शरीर की दशा बहुत कुछ सुधर जायगी। आत्म-विश्वास बढ़ जयगा और आत्म-विश्वास बढ़ जाने से हम आत्मोन्नति के पथ में और भी अग्रसर होंगे और चारों ओर अपनी कीर्ति-सुगन्धि फैला कर सभी के मुख से धन्य धन्य कहलायेंगे।

"भजन।"

"वार बार समझाय रहा हूँ,
मान ले रे मन मेरी कही को ॥१॥

"एको ब्रह्म पूर्ण सब जग में,
छोड़ कपट की गांठ गही को ॥२॥
"दुख सुख सो वीती सो बीती,
याद न कर ! बरबाद वही को ॥३॥
"जानकीदास सुमिरि श्री रघुवर,
गई सो गई, अब राख रही को ॥४

१७—अज्ञान का फल मृत्यु है

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते ।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्मात् विमुच्यते ॥१॥

"मनुष्य अपने ही कर्म करता है, अपने ही उसके भले-बुरे फल भोगता है, अपने ही कर्म से इस कराल संसार में चक्कर लगाता है और अपने ही कर्मों से इन सब से मुक्त भी होता है।" सारांश, आत्मघात व आत्मोद्धार यह सब अपने ही हाथ में है।

श्री मनु महाराज कहते हैं:—'किया हुआ कुकर्म व अधर्म कभी निष्फल नहीं होता। चाहे जंगल में भाग जाय, पर्वत में छिप जाय; आकाश में उड़ जाय, चाहे पाताल में घुस जाय, कहीं भी पाप कर्मों से छुटकारा नहीं होता ? पाप का भूत सिर पर सदा सवार ही रहता है ? अधर्म का फल जल्दी नहीं मिलता, केवल इसी कारण अज्ञानी व मोहान्ध लोग पाप से डरते हैं। परन्तु निश्चय जानो कि वह पापाचरण धीरे धीरे तुम्हारे सुख की जड़ों को बराबर काटता ही चला जा रहा है।"

यदि बालक जानते होते कि उनके ही किये हुए कुकर्मों के कारण उनकी ऐसी दुर्दशा हुई है; उनके कुकर्मों के फल उन्हीं

को भोगने पड़ते हैं, उस समय दूसरा कोई भी साथी नहीं होता है; यदि वे जानते होते कि काम से मनुष्य बेकाम बन जाता है और अकाल ही में मर जाता है; तो वे क्या कभी कुकर्मों में प्रवृत्त होते ? कदापि नहीं ! अज्ञान ही से मनुष्य कुकर्मों में प्रवृत्त होता है और अपना नाश कर लेता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अज्ञान ही से मनुष्य गड्ढे में जा गिरता है। जान बूझकर गड्ढे में कूद पड़ने वाले को एक तो परोपकारी महा-पुरुष समझना चाहिये या तो स्वार्थान्ध मोहान्ध पतित पुरुष समझना चाहिये। भला ऐसे आत्मघाती को कौन तार सकता है?

यदि कितना ही बढ़िया पक्वान्न तुम्हारे सामने रक्खा जाय और तुम्हें यह मालूम हो जाय कि इसमें विष मिलाया हुआ है, तो क्या कभी तुम उस पक्वान्न को खाओगे ? हमें पूर्ण विश्वास है कि तुम उस पक्वान्न को कदापि नहीं खाओगे ! बल्कि वहां से तत्काल उठ के चले जाओगे। वैसे ही सच्चा आत्मोद्धारक स्त्रियों के और अन्य मोहक पदार्थों के बाहरी रंगरूप में कदापि नहीं भूलता; वह फौरन वहां से हट जाता है और अपने को बचा लेता है। अज्ञानी व मोहान्ध पुरुष ही उसमें फँसते हैं और दीपलुब्ध पतङ्ग की भाँति जल के खाक हो जाते हैं। अज्ञान ही मृत्यु है और ज्ञान ही जीवन है ! "ज्ञानाग्निः सर्व कर्माणि भस्म-सात् कुरुतेऽर्जुन।" भगवान कहते हैं:— ज्ञानाग्नि से मनुष्य के सम्पूर्ण पाप-कर्म दग्ध हो जाते हैं और शुभ कर्मों से उनका उद्धार होता है।'

अब हमें पूर्ण विश्वास है कि हमने बालक-बालिकाओं को, उनके माता-पिताओं को और सम्पूर्ण गुरु जनों को यथेष्टरूप में

सचेत कर दिया है। अब वे इस ग्रन्थ को पढ़ने पर ऐसा कदापि नहीं कह सकते कि 'हमें मालूम नहीं था !'

अब आप लोगों को वीर्य-रक्षा के अनूठे व "स्वानुभूति" नियम बतलाये जाते हैं, जिनके द्वारा आप विषयों से निश्चय-पूर्वक बच सकते हैं और ब्रह्मचर्य की भलीभाँति रक्षा कर सकते हैं। इन नियमों के प्रताप से हम सपत्नी होते हुये भी अखण्ड ब्रह्मचर्य का अभंगपालन कर रहे हैं*। फिर जिनके स्त्री नहीं है, वे अपने ब्रह्मचर्य का पालन करने में समर्थ होंगे, इसमें संदेह ही क्या है ? यदि एक भी पुरुष, बालिका व बालक इन नियमों के अनुसार चल कर ब्रह्मचर्य द्वारा अपना उद्धार कर ले तो लेखक उस व्यक्ति का बहुत ही उपकृत होगा और अपने को धन्य समझेगा।†

भगवान आपको सुबुद्धि व आत्मिक बल प्रदान करे !

ॐ ! आपका नम्र सेवक,

शिवानन्द

---

*पर अब ता० २९-१-१९२९ शुक्रवार के दिन हमारी महाभाग्य-शालिनी सौ० सती पत्नी 'कैलाशवासिनी' अर्थात चिर 'समाधिस्थ' हुई हैं। श्री शिवेच्छा। औ३म् ! शिवानन्द।

†सूचना—यदि किसी को ब्रह्मचर्य के विषय में किसी शङ्का का समाधान करना हो तो निम्नोक्त पते पर पूछ सकते हैं। परन्तु उत्तर पाने के लिये टिकिट या रिप्लाई कार्ड अवश्य भेजना होगा।

पता:—शिवानन्द C|O प्रो० माणिकराव, बड़ौदा।

१८—वीर्य-रक्षा के अनूठे नियम

नियम पहला—"पवित्र संकल्प।"

वक्तव्य—संकल्प उन विचारों का नाम है जिनमें पूर्ण विश्वास भरा हो! परमात्मा विश्वास में होता है, यह बात हमें कभी न भूलनी चाहिये। यदि सोते समय मनुष्य ऐसा सोच कर सोवे कि आज 'मैं चार बजे उठूँगा' तो निश्चय जानो कि उस मनुष्य की आँखें चार बजे अवश्य खुल जाती हैं। आलस्यवश यदि वह फिर से सो जाय तो दूसरी बात है। सामान्य विचारों में यदि वह शक्ति है तो श्रद्धा या दृश्य भावनापूर्ण विचारों से कितनी प्रचंड शक्ति होती होगी, इसका आपही अनुमान कर सकते हो।

एक मनुष्य गर्मी के दिनों में घाम से अत्यन्त व्याकुल हो गया था। दूरी पर उसे एक पेड़ दिखाई दिया। वैसे ही वह भागता हुआ वहाँ गया। पेड़ की शीतल छाया से उसे बहुत ही सुख उपजा। वह था "कल्प वृक्ष"। मनुष्य ने मन में सोचा, यदि यहाँ पीने के लिये ठंडा जल होता तो क्या ही आनन्द होता। ऐसा सोचते ही उसके बगल में सुन्दर शीतल झरना निर्माण हुआ। उस पर दृष्टि जाते ही वह बोल उठा 'अरे वाह! यहाँ तो झरना मौजूद है! (थोड़ा पानी पीकर) अहह! क्या ही ठण्डा और मीठा जल है! यदि इस समय पास में कुछ मेवा होता तो क्या ही आनन्द होता।' यह सोचते ही वहाँ पर तत्काल मेवा से भरा हुआ एक सुन्दर पात्र निर्माण हुआ! उसे देखते ही उसने सोचा 'एं—यह क्या चमत्कार है? मालूम होता है यहाँ पर कुछ

शैतान का खेल है ! ऐसा सोचते ही उसे वहाँ पर इधर-उधर चारों ओर नाचने कूदने की डरावनी आवाज सुनाई देने लगी। उसने सोचा 'सचमुच यहाँ पर स्मशान ही मालूम होता है। कहीं ऐसा न हो कि कोई शैतान मेरे सामने आकर खड़ा हो जाय ? ऐसी शंका करते ही एक महान् विकराल "भूत" उसके सामने आ कर खड़ा हुआ और उसकी ओर गुर्राते हुये देखने लगा। मनुष्य ने डर के मारे आँखें मूद लीं और मन में कहने लगा 'अरे बाप ! यह मुझे खा तो नहीं जायगा ! ज्योंही उसने ऐसा सोचा त्योंही उस पिशाच ने उसको मुँह में डाल कर तत्काल खा लिया।

ठीक यही दशा अच्छे या बुरे विचार करने वालों की भी हुआ करती है। कल्पवृक्ष कहाँ है; यह तो हम नहीं जान सकते, परन्तु ऐसा कोई भी स्थान नहीं है कि जहाँ परमात्मा न हो। वह घट घट में और अणु परमाणु में भरा हुआ है और ईश्वर से बढ़ कर दादा कपलपवृक्ष दूसरा कोई भी नहीं हो सकता और आप हम सब उसी छाया में बैठे हुये हैं; तब ऐसे सर्वत्र व्यापमान कल्पवृक्ष के सामने मनुष्य की सम्पूर्ण भली बुरी कामनायें सिद्ध होंगी, इसमें सन्देह ही क्या है ? अच्छे विचारों से उसे अवश्य ही मेवा मिलेगा और बुरे विचारों से वह पिशाचों द्वारा अवश्य ही खाया जायगा। सारांश, मनुष्य अपने ही विचारों से नष्ट और श्रेष्ठ बनता है; इसमें कोई भी शक नहीं। चाहे कितने ही गुप्तरूप से हृदय के भीतर हम कोई कल्पना—फिर कर्म तो दूर रहा--करते हों तो उसे भी परमात्मा देखता है और उसके भले बुरे फल हमें बराबर देता है। "मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयो,"--भगवान् का यह अटल सिद्धान्त है। मन ही मनुष्य को गुलाम बनाता है। मन ही

१८—वीर्य-रक्षा के अनूठे नियम

नियम पहला—"पवित्र संकल्प ।"

वक्तव्य—संकल्प उन विचारों का नाम है जिनमें पूर्ण विश्वास भरा हो ! परमात्मा विश्वास में होता है, यह बात हमें कभी न भूलनी चाहिये । यदि सोते समय मनुष्य ऐसा सोच कर सोवे कि आज 'मैं चार बजे उठूँगा' तो निश्चय जानो कि उस मनुष्य की आँखें चार बजे अवश्य खुल जाती हैं । आलस्यवश यदि वह फिर से सो जाय तो दूसरी बात है। सामान्य विचारों में यदि वह शक्ति है तो श्रद्धा या दृश्य भावनापूर्ण विचारों से कितनी प्रचंड शक्ति होती होगी, इसका आपही अनुमान कर सकते हो ।

एक मनुष्य गर्मी के दिनों में घाम से अत्यन्त व्याकुल हो गया था। दूरी पर उसे एक पेड़ दिखाई दिया। वैसे ही वह भागता हुआ वहाँ गया। पेड़ की शीतल छाया से उसे बहुत ही सुख उपजा। वह था "कल्प वृक्ष"। मनुष्य ने मन में सोचा, यदि यहाँ पीने के लिये ठंडा जल होता तो क्या ही आनन्द होता। ऐसा सोचते ही उसके बगल में सुन्दर शीतल झरना निर्माण हुआ। उस पर दृष्टि जाते ही वह बोल उठा 'अरे वाह ! यहाँ तो झरना मौजूद है ! (थोड़ा पानी पीकर) अहह ! क्या ही ठण्डा और मीठा जल है ! यदि इस समय पास में कुछ मेवा होता तो क्या ही आनन्द होता।' यह सोचते ही वहाँ पर तत्काल मेवा से भरा हुआ एक सुन्दर पात्र निर्माण हुआ ! उसे देखते ही उसने सोचा 'एं- यह क्या चमत्कार है ? मालूम होता है यहाँ पर कुछ

शैतान का खेल है ! ऐसा सोचते ही उसे वहाँ पर इधर-उधर चारों ओर नाचने कूदने की डरावनी आवाज सुनाई देने लगी। उसने सोचा 'सचमुच यहाँ पर श्मशान ही मालूम होता है। कहीं ऐसा न हो कि कोई शैतान मेरे सामने आकर खड़ा हो जाय ? ऐसी शंका करते ही एक महान् विकराल "भूत" उसके सामने आ कर खड़ा हुआ और उसकी ओर गुर्राते हुये देखने लगा। मनुष्य ने डर के मारे आँखें मूद लीं और मन में कहने लगा 'अरे बाप ! यह मुझे खा तो नहीं जायगा ! ज्योंही उसने ऐसा सोचा त्योंही उस पिशाच ने उसको मुँह में डाल कर तत्काल खा लिया।

ठीक यही दशा अच्छे या बुरे विचार करने वालों की भी हुआ करती है। कल्पवृक्ष कहाँ है; यह तो हम नहीं जान सकते, परन्तु ऐसा कोई भी स्थान नहीं है कि जहाँ परमात्मा न हो। वह घट घट में और अणु परमाणु में भरा हुआ है और ईश्वर से बढ़ कर दादा कपल्पवृक्ष दूसरा कोई भी नहीं हो सकता और आप हम सब उसी छाया में बैठे हुये हैं; तब ऐसे सर्वत्र व्यापमान कल्पवृक्ष के सामने मनुष्य की सम्पूर्ण भली बुरी कामनायें सिद्ध होंगी, इसमें सन्देह ही क्या है ? अच्छे विचारों से उसे अवश्य ही मेवा मिलेगा और बुरे विचारों से वह पिशाचों द्वारा अवश्य ही खाया जायगा। सारांश, मनुष्य अपने ही विचारों से नष्ट और श्रेष्ठ बनता है; इसमें कोई भी शक नहीं। चाहे कितने ही गुप्तरूप से हृदय के भीतर हम कोई कल्पना—फिर कर्म तो दूर रहा--करते हों तो उसे भी परमात्मा देखता है और उसके भले बुरे फल हमें बराबर देता है। "मन एव मनुष्याणां कारणं बंध मोक्षयो,"--भगवान् का यह अटल सिद्धान्त है। मन ही मनुष्य को गुलाम बनाता है। मन ही

मनुष्य को स्वर्ग में या नरक में बिठा देता है। स्वर्ग या नरक में जाने की कुंजी भगवान् ने हमारे ही हाथ में दे रखी है? उसे सीधी या टेढ़ी घुमाना हमारे हाथ है। मनुष्य की सुगति व दुर्गति उसके भले बुरे संकल्पों, विचारों पर ही सर्वथा निर्भर है। पापमय विचारों से वह पापात्मा और पुण्यमयी विचारों से वह निःसन्देह पुण्यात्मा बन जाता है। उच्च व पवित्र विचारों से, कितनाहू पतित मनुष्य क्यों न हो वह भी उच्चातिउच्च पवित्रात्मा बन सकता है। परन्तु भगवान कहते हैं "उसके बुद्धि का निश्चय पूरा होना चाहिये।" अर्थात् ऐसा पुरुष फिर पापकर्म नहीं कर सकता "विश्वासो फलदायकः।" यह भगवान का वचन है। जितना विश्वास अधिक होगा उतना उसका फल भी अधिक होता है। महापुरुषों का विश्वास इतना प्रबल और अनन्य होता है कि वे पानी का घी और बालू की चीनी तक बना सकते हैं। ऐसा ही अनन्य विश्वास हमारा भी होना चाहिये। "संशयात्माविनश्यति" —संशयी पुरुष का नाश होता है। अतः निःसंदेह भाव से संकल्प करने पर हमारा अवश्य ही उद्धार होगा, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। सच पूछिये तो कुकल्पना ही शैतान है। अतः जिसको तरना हो उसे चाहिये कि हठपूर्वक कुबुद्धि को, कुविचारों को त्याग कर सुबुद्धि को धारण करे और आज ही से इसी समय से पवित्र विचारों को शुरू कर दे! निःसन्देह अपरिमित कल्याण होगा। अतः निद्रा के पूर्व रोज पाव घण्टा अवश्य पवित्र संकल्प किया करो। इससे सब कुस्वप्नों का नाश होकर, तुम में एक अद्भुत दैवी शक्ति प्रकट होगी और तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध होंगे। "पुरुषप्रयत्नशीलस्य असाध्यं नास्ति"—मनुष्य के उचित प्रयत्न करने पर असाध्य कुछ भी नहीं है। आज

बीज बोया और कल फल चाहा, ऐसे अधीर मनुष्य को कदापि यश नहीं मिलता। यदि जल्दी फल न मिले तो मन में समझो कि पहले के पाप-संकल्प अधिक हैं, परन्तु वे पुण्य-सङ्कल्पों द्वारा निश्चय ही परास्त होंगे। जब तक हृदय के अपवित्र भाव हट न जाँय तब तक हठपूर्वक प्रबल वेग से पुनः पुनः चेष्टा करो। भगवान कहते हैं कि "तुम्हारी यह चेष्टा कभी निष्फल न होगी, तुम्हारा अवश्य ही उद्धार होगा।" "नहि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गति तात गच्छति।"

"ध्वनि वैसी प्रतिध्वनि" यह भी प्रकृति का एक अटल सिद्धांत है। यदि हम कुँए में झांक कर कर कहें कि "नाश हो तेरा" तो उधर से भी "नाश हो तेरा" ऐसा ही जवाब मिलेगा और यदि "भला हो तेरा" ऐसा कहें तो ऐसा ही उत्तर मिलेगा। अतः जिस प्रकार हम भगवान की स्तुति प्रार्थना वा संकल्प करेंगे, ठीक वैसे ही भगवान भी हमें कहेंगे। यदि हम कहेंगे कि "भगवान् आप वीर्यवान हो, भाग्यवान् हो" तो भगवान् भी उलट कर हमसे यही कहेंगे, कि "आप वीर्यवान हो; भाग्यवान् हो," इत्यादि। इस पर भी हमारे धर्म शास्त्रों में जो ईश्वर के स्तोत्र और मन्त्र नित्य पाठ के लिये रक्खे गये हैं उनमें हमारे उद्धार का कितना उच्च हेतु भरा हुआ है, यह पूर्णतया सिद्ध होता है। अतः जिस प्रकार हम अपने को बनाना चाहते हैं उसी प्रकार से स्तुति प्रार्थना "निःशंक" भाव से रोज किया करें, बहुत ही उपकार होगा।

तुलसी अपने राम को, रीझ भजे चहे खीझ।
खेत परे पर जामि है, उलटा सुलटा बीज॥

इसी प्रकार हमारे कायिक, वाचिक, मानसिक शुभाशुभ कर्मों के

फल भी हमें अवश्य ही मिलते हैं। मामूली बीज तो कोई उगता भी नहीं, परन्तु कर्मबीज एक भी उगे विना नहीं रहता, सभी फल-रूप होते हैं। अतः प्रातः काल उठते ही प्रथम अत्यन्त प्रेम से एक दो, चार बढ़िया स्तोत्र वा भजन रोज कहो और फिर अलग पवित्र आसन पर बैठ कर अत्यन्त दृढ़ विश्वास से नीचे दिये अनुसार पवित्र व उच्च संकल्प किया करो। देखो संकल्प ही कहते कहते तुम में कैसा दैवी तेज प्रवेश करता है।

"संकल्प-प्रार्थना"

वक्रतुण्ड महाकाय सूर्य कोटि समप्रभ।
निर्विघ्नं कुरु मे देव ! सर्वकार्येषु सर्वदा" ॥ १ ॥

'सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।
स्वर्गाऽपवर्गदे देवि ! नारायणि ! नमोस्तुते ॥ २ ॥

"गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरवेनमः" ॥ ३ ॥

१—मन ही गणेश(गण-ईश अर्थात् इन्द्रिय समूह को हिलाने वाला स्वामी) है।

२—बुद्धि ही सर्वान्तर्व्याप्त ज्ञानदेवी सरस्वती है।

३—आत्मा ही परब्रह्म परमात्मा है। और,

४—आत्मा की सत्वरज-तमात्मक त्रिमूर्ति श्रीदत्तात्रेयस्वरूप सद्गुरु हैं।

अर्थ—"हे वक्रतुण्ड (टेढ़ी शुण्ड वाले) ॐकार ! आप विश्वोदर हो, विश्वव्यापी हो। अनन्त कोटि सूर्यतुल्य आपका प्रकाश है। आपको मेरा बार बार प्रणाम है। हे भगवन् ! मेरे

सम्पूर्ण विघ्न नष्ट करके मेरे सम्पूर्ण कार्य सदैव सिद्ध करो।" "सम्पूर्ण लोगों के हृदय में बुद्धिरूप से सदा विराजमान रहने वाली और स्वर्ग तथा मोक्ष देने वाली हे परम दयालु माता, देवी नरायणी! तेरे चरण कमल में मेरा बार बार प्रणाम है।" "आप मुझे सदैव सुबुद्धि दो। हे जगद्गुरो! आपही ब्रह्मा विष्णु महेश्वर हो, सम्पूर्ण जगत् के प्रेरक तथा चालक हो! आप ही की आज्ञा से चन्द्र सूर्य प्रकाशित होते हैं। वायु बहता है, मेघ बरसते हैं और सम्पूर्ण चराचर जीव अपना अपना कार्य सुयन्त्रित कर रहे हैं। आप साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हो, आप अनाथों के नाथ हो, ठोकर लगने पर भी, सम्हालने वाली भूमि की तरह अनन्त अपराध हाथ से होने पर भी—महान अपराधी होने पर भी—हमें सम्हालने वाले, हमारे एकमात्र आधार आप ही हो, हम आप ही के शरण हैं। आप शरणागत-वत्सल हो, आप हमें सच्चा सन्मार्ग दिखलाओ और हमारी बाँह पकड़कर हमें सन्मार्ग से कभी विचलित न होने दो। आपको मेरा सनम्र बारबार प्रणाम है।"

त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!! त्राहिमाम्!!!

"प्रेरक संकल्प"

१—ईश्वर सर्वत्र व्यापमान है, ईश्वर मेरे भीतर है, मैं ईश्वर हूँ। "अहं ब्रह्मास्मि" यही मेरा सच्चा स्वरूप है। ॐ!

२—ईश्वर सत्य स्वरूप, ज्ञानस्वरूप व आनन्दस्वरूप है, ईश्वर सच्चिदानन्द है, ईश्वर मेरे भीतर है, मैं भी सच्चिदानन्द-रूप हूँ। ॐ।

३—ईश्वर पूर्ण निर्भय, निःसंग व निष्पाप है। मैं भी पूर्ण निर्भय, निःसंग व निष्पाप हूँ। ॐ!

४—ईश्वर परम वीर्यवान्, पूर्ण भाग्यवान् व असीम सामर्थ्यवान् है। मेरा भी स्वरूप वही है, मैं भी परम वीर्यवान, पूर्ण भाग्यवान् व असीम सामर्थ्यवान् हूँ। ॐ!

५—ईश्वर पूर्ण निष्काम, निर्विषय व निर्विकारी है, ईश्वर मुझ में है, मैं भी पूर्ण निष्काम, निर्विषय व निर्विकारी हूँ। ॐ!

आवश्यक सूचना:—"मैं" शब्द "ईश्वर" बोधक है, न कि शरीर बोधक। क्योंकि यह साढ़े तीन हाथ का अभिमानी चोला मृत्यु के बाद ज्यों का त्यों पड़ा रहने पर भी "मैं" नहीं कह सकता। अतः "मैं" यह 'सर्वव्यापी' शब्द केवल ईश्वर बोधक ही समझना चाहिए, न कि देह का बोधक! देहाभिमान से अधः-पतन होगा यह बात सदा ध्यान में रखना चाहिये।

६—मैं ईश्वर हूँ, मेरी शक्ति अनन्त है। मैं जो चाहूँ सो कर सकता हूँ। ॐ!

७—मैं पुरुष हूँ, प्रकृति मेरी स्त्री है, अतः प्रकृति को मेरी आज्ञा अक्षर अक्षर माननी होगी।

८—अय प्रकृति देवी! मन तथा इन्द्रिय को विषय का स्मरण न करने दो। उन्हें विषय की ओर न जाने दो। उन्हें विषय से पीछे हटाओ। उन्हें विषय से खूब सम्भालो। हरगिज़ उनका नाम न होने दो। इन्हें विवेक से शान्त व सुखी करो। देखो, इस आज्ञा का ठीक ठीक पालन करो। ॐ!

द्वितीय सूचना—अब नीचे के संकल्प हृदय की ओर देखते हुये करो, मानो परमात्मा हृदय में ही बैठे हुए हैं और हम 'भक्त' भाव से, परमात्मा से बातचीत कर रहे हैं। इन संकल्पों से

शरीर पर अत्यद्भुत परिणाम होते हुये दिखाई देंगे। रोगी भी निरोग होंगे, क्रोधी भी शांत होंगे और कामी भी ब्रह्मचारी होंगे। इस निश्चय को पूर्ण सत्य जानो। परन्तु दृष्टि हृदय पर लगी हुई होनी चाहिये और परमात्मा को हृदयस्थ समझ उसे सम्बोधित कर संकल्प करना चाहिये।

९—हे परमात्मन्! आप प्रेमस्वरूप शान्तिरूप व क्षमारूप हो। इस दास के नस नस में प्रेम का, शान्ति का तथा क्षमा का सञ्चार हो रहा है। उनकी सनसनाहट का मैं अनुभव कर रहा हूं। ॐ!

१०—भगवान्! आपके पास दुःख, रोग, चिन्ता, भीति, दारिद्र्य कहां? आप सदा सर्वदा सुखी, निरोगी, निश्चिन्त, निर्भय, लक्ष्मीपति हो। सुखः समृद्धि, शान्ति, आरोग्य, निर्भयता, आदि मुझ में संचार कर रहे हैं, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। पहले से मैं अधिक आरोग्य हूं, अधिक निर्भय हूँ, अधिक शान्त हूं. निर्विकारी हूँ। ॐ!

११—आज रात्रि में स्वप्न-दोष नहीं होगा हैं बहुत जल्द दुरुस्त हूँगा! भगवान् मुझे सम्हालो! वीर्य नाश होने के पहले ही मेरी आंखें खोल दो, मुझे जागृत कर दो, अब मैं किसी से नहीं डरूँगा क्योंकि मेरे रक्षक प्रभु हैं। ॐ!

१२—वृत्तियां अब दिन-ब-दिन पवित्र हो रही हैं, दृष्टि में प्रत्येक स्त्री के लिये मातृभाव समाया है. कानों में ब्रह्मचारियों का यश गूँज रहा है। मैं अब ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा हूँ, मेरा उद्धार हो रहा है। ॐ!

१३—प्रभो, मैं तेरा हूं और तू मेरा है।

"अब करुणा कर कीजिय सोई।
जा बिधि मोर परम हित होई।"
त्राहिमाम्! त्राहिमाम्! त्राहिमाम्!!!

इस प्रकार रोज प्रातःकाल, सायंकाल और भोजन के समय ऐसे केवल तीन ही बार यदि विश्वास और दृढ़ता के साथ हम संकल्प करेंगे तो अपरम्पार कल्याण होगा। महापुरुष कहते हैं—

"स यः संकल्पब्रह्मेत्युपास्ते कलृप्तान्वै सः।
लोकान् ध्रुवान ध्रुव प्रतिष्ठान् प्रतिष्ठते ॥१॥

जो इस संकल्परूपी ब्रह्म की नित्यप्रति उपासना करता है, वह निर्भय होकर इस लोक व परलोक में ईश्वर के तुल्य पूजनीय बन जाता है और उसका सर्वत्र सम्मान होता है।"

"सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयः।
सर्वेभद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात ॥१॥

शुभं भवतु।

"तथास्तु"

"पवित्र-मातृभाव दृष्टि"

नियम दूसराः—

वक्तव्य—वीर्य-रक्षा के लिए हमें हनुमानजी को मुख्य आदर्श मान उनकी तरह प्रत्येक स्त्री की ओर, यदि देखना ही हो तो

"मातृवत् परदारेषु" अर्थात् ":पर तिय मात समान" इसी पवित्र दृष्टि से देखना चाहिये। परन्तु किसी स्त्री की ओर आंख उठा कर न देखना ही पवित्र दृष्टि बनाए रखने का सर्वोत्कृष्ट मार्ग है। किसी स्त्री का ध्यान व स्मरण कदापि न करो। स्त्रियों के कोई चित्र किंवा मूर्ति भी कभी न देखो, फिर स्त्रियों की ओर देखना तो दूर रहा! यदि किसी स्त्री का ध्यान आवे तो तत्काल अपने परमात्मा के फोटो का तथा अपनी माता का ध्यान करने लगो। अपनी मां व ईश्वर को उस स्त्री में देखने लगो। कोई अंग प्रत्यंग स्मरण हो तो 'उसी क्षण" अपनी मां के उसी अंग प्रत्यंग को उसमें स्थापित करो। निःसन्देह तुम्हें अपनी करनी पर अत्यन्त लज्जा व घृणा प्राप्त होगी और तुम उस स्त्री का नाशकारी ध्यान करना ही छोड़ दोगे। यदि कोई स्त्री सामने भी आ जाय तो फौरन अपनी दृष्टि नीची कर लो; दृष्टि ऊपर हरगिज़ न उठाओ, और तत्काल मन में; "भगवन्नाम स्मरण" अथवा "मां" "मां" "मां" इस महामन्त्र का निरन्तर जप करने लग जाओ, निस्सन्देह तुम्हारी सम्पूर्ण पापमय वासनायें दग्ध हो जायंगी और मन पूर्णतया पवित्र बना रहेगा। मातृनाम पवित्र है, मातृनाम का जप इतना श्रेष्ठ है कि कुचिन्ता पास आ ही नहीं सकती। अवश्य अनुभव कीजियेगा, परम उद्धार होगा। यदि किसी स्त्री से बातचीत करने का प्रसंग ही आवे, तो बहुत कम बातचीत करो और उन्हें 'हे बहन, हे मां" इत्यादि पवित्र नामों से सम्बोधित करो। परन्तु हमेशा दृष्टि को नीची बनाये रखने की बात कभी मत भूलो; इस बात को अपने हृदय पट पर अंकित कर रक्खो। स्त्री-समाज में आवागमन सहसा न करो। स्त्रियों से एकान्त में बातचीत करना सर्वथा त्याग दो। क्योंकि

वैसा करना स्त्री-पुरुष दोनों के लिये हानिकारक व नाशकारक है। भक्तदास वामन कहते हैं—

यदपि मात भगनी सुता तऊ न बैठे पास ।
प्रबला हैं ये इन्द्रियां करो न तुम विश्वास ॥

श्री लक्ष्मणजी की तरह प्रत्येक स्त्री को जगज्जननी जानकीजी का ही रूप समझ कर, मातृ-भाव से उसे मन ही मन प्रणाम करो और "सिया राममय सब जग जानी"—ऐसा पवित्र चिन्तन करने लगो।

स्त्रियों को "पर नर तात समान" ऐसी शुद्ध दृष्टि रखनी चाहिये, निस्सन्देह उद्धार होगा। मातृ-चिन्तन या ईश्वर-चिन्तन यह विषय-चिन्तन को मिटाने की एक बड़ी ही उत्कृष्ट दवा है। आप भी इसका सेवन कीजिये और अपना उद्धार कर लीजिये। जब तक हमारी दृष्टि बन्द है, हम निद्रित हैं, तब तक बगल में पड़े हुये महा विषधर काले सांप से भी हम नहीं डर सकते; पूर्ण निर्भय बने रहते हैं। परन्तु दृष्टि पड़ते ही उसका कितना भयंकर परिणाम होता है यह तत्काल स्पष्ट दिखाई देता है। वैसी ही जब तक किसी स्त्री की ओर हम पलक उठा के नहीं देखेंगे; उसका मुँह काला है या गोरा है ऐसा नहीं जानेंगे, तब तक यदि प्रत्यक्ष हमारे सामने उर्वशी भी आके खड़ी क्यों न हो जावे तो वह भी हमें एक रत्ती भर डिगा नहीं सकती, हमारे चित्त को विचलित नहीं कर सकती। परन्तु दृष्टि जाते ही नष्टदृष्टि पतिंगे की तरह, उस मनुष्य के बाहर-भीतर आग लग जाती है। श्रीमान् शंकराचार्य कहते हैं—

दोषेण तीव्रो विषयः कृष्णः सर्प विषादपि ।
विषं निहन्ति भोक्तारं द्रष्टारं चक्षुषाप्यहम् ॥ १ ॥
—विवेक चूड़ामणि ।

अर्थातः—काले सांप के विष से भी बढ़कर विषय-जन्य विष अत्यन्त भयानक है । विष तो पी लेने पर मनुष्य मरता है परन्तु यह विषय बिष इतना उग्र है कि केवल उसकी ओर देखने मात्र ही से मनुष्य धूल में मिल जाता है ! भक्तदास वामन ने क्या ही ठीक कहा है कि:—

अहि विष तो काटे चढ़े, यह दृगवत चढ़ि जाय ।
ज्ञान, ध्यान, बल, धर्म को प्राण सहित खा जाय ॥ १ ॥

"स्त्री के सारे शरीर में ज़हर भरा हुआ है" ऐसा कहने की जगह यदि यों कहा जाय कि "सब विष दृष्टि ही में भरा हुआ है" तो बहुत ही यथार्थ होगा । सारा संसार आपको यदि कण्टक-मय ही मालूम होता हो तो स्वयं अपने पैर में जूता डाल कर बाहर निकालना ही आपकी बुद्धमानी होगी । शिकायत करना निरी मूर्खता है । क्योंकि आप समस्त संसार को निष्कंटक तो नहीं बना सकते हैं और न उसे चमड़े से ही ढांक सकते हैं ? उसी प्रकार सम्पूर्ण जगत को आप नारि-रहित तो बना नहीं सकते हो । हां, अपनी ही पापमय दृष्टि को आप अवश्य पवित्र बना सकते हो । इसी में आपकी बुद्धिमानी है और सद्गति है । स्त्री जाति पर व्यर्थ कुत्सित कटाक्ष करना निरी मूर्खता है । अतः दृष्टि को नीची रखने ही से हम विषय के हलाहल विष से बच सकते हैं । जब तक हम अपनी दृष्टि उठाकर किसी स्त्री पर नहीं

डालेंगे तब तक हमारा ब्रह्मचर्य निःसन्देह अटूट बना रहता है, यह अनुभवसिद्ध बात है। आप भी इसका अवश्य अनुभव कीजिये, निस्सीम कल्याण होगा।

एक बार शेषजी बीमार पड़े। बहुत दवा की, परन्तु आराम नहीं हुआ। अन्त में धन्वन्तरी ने शेषजी की आँखें बांधी और फिर दवा दी। तब बहुत जल्द दुरुस्त हो गये। मित्रो! शेषजी के नेत्र क्यों बांधे गये, जानते हो? सुनो, जब तक शेषजी के नेत्र खुले थे तब उनके नेत्रों से निकलने वाली विषमयी ज्वालाओं से सब औषधि बिलकुल विष बन जाती थी, अमृतवल्ली भी विषवल्ली बन जाती थी। नेत्र जब बांधे गये तभी दवा बनी रही और वे चंगे हो गये। इसी प्रकार जब तक हम अपनी विषय पूर्ण पापी दृष्टि को बन्द अर्थात नीची नहीं करेंगे तब तक सात जन्म में हमारा सुधार नहीं हो सकता। अतः चंचल चित्त वालों को पर-स्त्री की ओर देखना एकदम प्रतिज्ञापूर्वक त्याग ही देना चाहिये। जो प्रण करके इसके अनुसार चलेगा, उसको अवश्य ही मेवा मिलेगा, उसका अवश्य ही उद्धार होगा और जो मोहवश पर स्त्री की तरफ ताकेगा उसको उसका ही निर्मित पापरूपी पिशाच अवश्य ही खा डालेगा। विषयी दृष्टि को बन्द करने से—किसी स्त्री की ओर बिलकुल न ताकने से—पापी से पापी मनुष्य भी बहुत जल्द सुधर सकता है। नीची अर्थात् नम्र दृष्टि ही से मनुष्य ऊँचा से ऊँचा बन सकता है। जो गीध या ऊँट की तरह किसी स्त्री की ओर गर्दन उठा के वा घुमा के ताकेगा वह फौरन नरक-कुंड में जा गिरेगा। नीच पुरुष सती स्त्रियों की ओर भी पापी ही दृष्टि से देखा करते हैं। भला ऐसे नारकी पुरुषों का कैसे भला हो

सकता है ? भक्तदास वामन कहते हैं:—

चटक मटक नित कुमति बन तकत चलत चहुँ ओर।
वामन ! ऐसे अधम नर पड़े नरक में घोर॥

ऋष्यमूक पर्वत पर जब श्रीसीता देवी के गहने श्री लक्ष्मण जी के सामने जाँचने के लिये रक्खे गये तब श्री लक्ष्मणजी क्या ही उत्कृष्ट उत्तर देते हैं:—

"नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरेत्वभिजानामि नित्य पादाभिवन्दनात्" ॥ ? ॥

"इन सब गहनों में केवल नूपुर ही मेरे पहिचान के हैं जो रोज़ वन्दन करते समय मैं श्रीसीता माता के चरणों में देखता था। इन केयूर कुण्डलों को और अन्य गहनों को मैं नहीं जानता हूँ। क्योंकि चरणारविन्द को छोड़ कर मैंने दृष्टि उठाकर कभी ऊपर देखा ही नहीं !' अहह, धन्य हैं श्री लक्ष्मण जी, आपकी यह आदर्श शिक्षा ! यही कारण था कि आप चौदह वर्ष पर्यन्त श्रीसीतादेवी जैसी त्रैलोक्य सुन्दरी के साथ रहते हुये भी अपना ब्रह्मचर्य का अटूट पालन कर सके और मेघनाद जैसे प्रबल शत्रु को मार सके। मेघनाद तो केवल 'इन्द्रजीत' ही था परन्तु आप उससे भी बढ़कर 'इन्द्र-जीत' थे। श्रीमच्छङ्कराचार्य कहते हैं 'जितं जगत् केन ? मनोहि येन !" सत्य है, एक मात्र 'इन्द्रियजीत हीं सम्पूर्ण त्रैलोक्य को जीत सकता है !

भाइयो ! तुम भी अपनी दृष्टि श्रीलक्ष्मण जी की तरह पवित्र बनाओ। प्रत्येक स्त्री के सामने दृष्टि को सदैव नीची ही रक्खो और मन में ईश्वर का चिन्तन व "माँ, माँ, माँ," इस पवित्र

महामंत्र का अटूट जप शुरू कर दो। तब ही तुम ब्रह्मचर्य का सच्चा पालन कर सकोगे और कामरूपी मेघनाद को निश्चय-पूर्वक मार सकोगे। सारांश यह कि किसी स्त्री की ओर न देखना ही ब्रह्मचर्य-रक्षा का परम श्रेष्ठ रहस्य है—उपाय है।

"सादी रहन-सहन"

नियम तीसरा:—

वक्तव्य:—ब्रह्मचर्य रक्षा के लिये हमें अपना जीवनक्रम "Simple living and high thinking" यानि "सादा बर्ताव और ऊँचा ख्याल" इस सदुपदेश के अनुसार अत्यन्त सीधा-सादा प्रकार का रखना होगा, क्योंकि सादापन ही बड़प्पन का चिन्ह है बल्कि रहस्य है। Simpleness is itself greatness संसार में आज तक जितने महापुरुष हुये हैं वे सब सादी ही रहन-सहन से हुये हैं। अधिक सुख-भोग की सामग्री से घिरे रहना मानो अपने को व्यभिचारी ही बनाना है। शृङ्गार से कामदेव जाग्रत होता है। विलासप्रियता से तन, मन, धन, तीनों बरबाद हो जाते हैं। ऐश-आराम का चसका ही मनुष्य को धूल में मिला देता है। आराम-तलब मनुष्य को कामरिपु पटक पटक कर मारता है। यही कारण है कि गरीबों से धनी लोग विशेष कामी और विशेष दुःखी रहते हैं। नखरेबाजी से मनुष्य आतिशबाजी की तरह बिलकुल जल उठता है। नकाशीदार लोटा या गिलास में जैसे सर्वत्र मैल भरा रहता है, उसी प्रकार नखरेबाज स्त्री-पुरुषों में भी काम, क्रोध, अहंकारादि मैल विशेष भरा रहता है। सत्पुरुष कहते हैं:—

भीतर सो मैलौ हियो, बाहर रूप अनेक।
नारायण तासों भलो, कौवा तन मन एक ॥

खुद "न-खरा" शब्द ही मनुष्य की खोटी चाल को साबित कर रहा है। विशेष सज-धज करना, ऊंचे ऊँचे और रंग-बिरंगे भड़कीले व कामोत्तेजक कपड़े पहनना, अपने हाथ, अपने गले में मालायें पहनना, अङ्ग में और बालों में सुगन्धित तैल, इत्र आदि लगाना, नेक्टाई, कालर, रिस्टवाच से अपने को सँवारना, बार बार शीशे में सूरत देखना, पान से मुँह लाल करना, ये सब ब्रह्मचर्य के लिये काल समान हैं। परन्तु शोक की बात है कि कई सयाने माता-पिता खुद अपने ही हाथ से, अपने बच्चों को इन विषय-प्रवृत्तिकर बातों में फँसा रहे और इस प्रकार अपने बच्चों को बिगाड़ रहे हैं। भला ऐसे लोग विषय को कैसे जीत सकते हैं ? "कहत कबीर सुनो भाई साधो ये क्या लड़ेंगे रण में ?" यदि हमारे इर्द गिर्द शृंगारपूर्ण सामग्री न हो तो आत्म-संयम के कामों में बहुत ही सहायता मिल सकती है और हम बड़ी आसानी से आत्मसंयम कर सकते हैं। पास में खाने के लिये होने पर जैसे बराबर झूठी ही भूख लगती है, वैसे ही विलासी वस्तुओं और व्यक्तियों से घिरे रहने पर मन में काम भी बराबर जाग उठता है। ऐसा करना असंशयतः अपने भले मन को और भी बिगाड़ना है, आग में तेल डालना है, और वास्तव में यह भी एक प्रकार का छिपा कुसंग है। अतः इन सब भोग-विलास की बातों से सदैव दूर रहो। सादी रहन-सहन अथवा भोग-विलास से विरक्ति ही ब्रह्मचर्य-रक्षा का सहज उपाय है। सादगी ही

जीवन है और सजावट ही नाश है, यह तत्व पूर्ण रीति से ध्यान में रखो।

"सत्सङ्गति'

नियम चौथा—

सत्संगत्वे निःसंगत्वं निःसंगत्वे निर्मोहत्वम्।
निर्मोहत्वे निश्चलतत्त्वं निश्चलतत्त्वे जीवन्मुक्तः॥

—श्रीमच्छङ्कराचार्य।

"सत्संग से निःसंग (Non attachment) की प्राप्ति होती है, निःसङ्ग से निर्मोहत्व अर्थात् विषय से अप्रीति बढ़ती है, निर्मोह से सत्य का पूरा ज्ञान व निश्चय होता है और सत्तत्व के निश्चल ज्ञान से मनुष्य जीवन्मुक्त होता है अर्थात् इस संसार से तर जाता है।"

वक्तव्य—संसार में 'आत्मोन्नति' के लिये जितने साधन हैं उन सब में सतसंग सब में श्रेष्ठ उपाय है। 'सत्सङ्ग' यह शब्द अत्यन्त महत्त्व का है। सत्सङ्ग में संसार की तमाम उन्नतिकर बातों का समावेश होता है। जैसे पवित्र व ऊँचे विचार करना, पवित्र स्वदेशी खद्दर पहनना आदि अनन्त बातों का समावेश होता है और 'कुसंग' में संसार की तमाम स्व-पर-नाशकारी बातों का समावेश होता है। सत्सङ्ग से मनुष्य देवता बनता है और कुसंग से मनुष्य राक्षस बन जाता है! भक्त तुलसीदास जी पूछते हैं "को न कुसंगति पाय नसाई ?" सच है, कुसंग से आज

तक बड़े बड़े शीलवान, गुणवान् और होनहार बालक-बालिकायें तथा स्त्री पुरुष धूल में मिल गये हैं। कुसङ्ग का प्लेग महान् भयानक होता है। जंगली जानवर का या काले साँप का भी साथ बहुत अच्छा है, उससे मनुष्य की केवल मृत्यु ही होगी। परन्तु दुर्जन का संग महान् दुर्गतिकर है; वह मनुष्य को नीच योनियों में व नरक में ही डालने वाला है। पण्डित विष्णुशर्मा कहते हैं--

"वरं प्राणत्यागो न पुनरधमानामुपगमः।"

"प्राण त्याग देना अच्छा है परन्तु नीचों के पास जाना तक बुरा है।" "जैसा सङ्ग वैसा रङ्ग" यही प्रकृति का कायदा है। धुवाँ के संग से सफेद मकान भी काला पड़ जाता है। लता में का कीड़ा लता ही के तुल्य हरा बन जाता है। वैसे ही दुर्जन के साथ मनुष्य भी दुर्जन बन जाता है और सज्जन के साथ सज्जन। "कामी के संग काम जागे" "कायर के संग शूर भागै पै भागै" "काजर की कोठरी में कैसोहू सयानो घुसो, एक रेखा काजर की लागै पै लागै।" कवि का यह कथन अक्षरशः सत्य है। नीचे पुरुष अपने ही तुल्य अपने मित्रों को भी नीच, पापी और दुरात्मा बना डालते हैं और सत्पुरुष अपने ही जैसे अपने मित्रों को भी पुण्यात्मा महात्मा बना देते हैं।

सत्संग की महिमा अपरम्पार है। सत्संग से मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है और कुसंग से नरक की प्राप्ति होती है। सत्संग की महिमा और कुसंग की अधमता किसी से छिपी नहीं है। कुसंग से मनुष्य जीते जी ही नरक का सा अनुभव करने लग जाते हैं। इसी कारण से

गोस्वामी जी कहते हैं--"वरु भल वास नरक कर ताता, दुष्ट संग जनि देहि विधाता ।" अतः कल्याण चाहने वालों को कुसंग को एकदम प्रतिज्ञापूर्वक त्याग देना चाहिए और सत्संग को प्रयत्नपूर्वक प्राप्त करना चाहिए। कुमित्रों से मित्ररहित रहना ही लाख गुना श्रेष्ठ है, क्योंकि कुसंग से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों मटियामेट हो जाते हैं और अन्त में महान् अधोगति होती है। परन्तु सत्संग से चारों पुरुषार्थ अनायास सध जाते हैं। याद रक्खो, राजपाट, गज, वाजि, धन, स्त्री, पुत्रादि सब कुछ मिलेंगे, परन्तु सत्संग मिलना परम दुर्लभ है। "विनु सत्संग विवेक न होई, राम कृपा विनु सुलभ न सोई।"—यह गोस्वामी जी का वचन अक्षरशः सत्य है! मोक्ष के सब साधन एक तरफ और सत्संग एक तरफ, दोनों में सत्संग का ही दर्जा बहुत ऊँचा है।

"तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुलै न ताही सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग।"

सच है, "शठ सुधरहिं सतसंगति पाई" कैसे? तो जैसे "पारस परसि कुधातु सुहाई।" यह नितान्त सत्य है कि 'सम्पूर्ण दुराचार और व्यभिचार की जड़ एकमात्र कुसंगति ही है।" अतः ब्रह्मचारियों को तथा अभ्युदयेच्छुकों को चाहिये कि कभी भी जीभ से बुरी बात न कहें, कान से बुरी बात न सुनें (जैसे कजली, होली की गालियाँ व भद्दे भद्दे गीत आदि) आँख से बुरी चीज़ न देखें (जैसे नाटक, तमाशा सिनेमा, नाचवाली रामलीला, भद्दी चीज़ इत्यादि) पैर से बुरी जगह न जायँ, हाथ से बुरी चीज़ न छुवें और मन से विषय-चिन्तन हरगिज़ न करें। वल्कि कुभावों को

नष्ट करने वाला परमात्मा का ही शुभचिन्तन व ध्यान हमेशा करें। बस, फिर तुम महात्मा ही हो और तुम्हें यहीं पर सच्चा स्वर्ग है।

एक समय भगवान् विष्णु ने राजा बलि से पूछा कि "तुम सज्जनों के साथ नरक में जाना पसन्द करोगे या दुर्जनों के साथ स्वर्ग में ?" बलि ने तत्काल उत्तर दिया कि "मैं सज्जनों के साथ नरक में ही जाना पसन्द करूंगा।" पूछा, 'क्यों ?' तब जवाब मिला, "जहाँ पर सज्जन हैं, वहीं पर स्वर्ग है और जहाँ पर दुर्जन हैं वहीं पर नरक है। दुर्जन पुरुष स्वर्ग को भी नरक बना कर छोड़ते हैं और सज्जन पुरुष नरक को भी स्वर्ग बना देते हैं। सत्पुरुष जहाँ जाँयगे वहीं पर स्वर्ग बन जाता है।

"सत्संगः परमं तीर्थं सत्संगःपरमं पदम्।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य सत्संग सततं कुरु॥"

सत्संग ही परम पवित्र तीर्थ है। सत्संग ही श्रेष्ठतम पद अर्थात् मोक्ष है, इसलिये सब छोड़छाड़ कर काया वाचा मनसा से नित्य सत्संग का ही सेवन करो। जब जब चित्त में नीच विषय विकार उत्पन्न हों, तब उस परिस्थिति का एक दम त्याग कर, सत्पुरुषों या सुमित्रों के पास तुरन्त जा बैठो। वहाँ जाते ही तुम्हारी सम्पूर्ण नीच वृत्तियाँ तत्काल दब जाँयगी और मन व तन दोनों शान्त व पवित्र बन जायेंगे, यह स्वानुभव सिद्ध बात है। आप भी इसका अनुभव कर अपना उद्धार कीजिये।

एकान्तः—जिनके चित्त में कुविचार उत्पन्न होते हों, ऐसे दुर्बल चित्त वाले व्यक्तियों को एकान्तवास कदापि न करना चाहिये। उन्हें सदा, इष्ट-मित्र, माता-पिता, भाई इनके समीप ही रहना चाहिये, इसी में कल्याण है।

"सद्ग्रन्थावलोकन"

नियम पाँचवाँ:—

वक्तव्य:—जहाँ सन्मित्र व सज्जन-सङ्गति दुर्लभ हो वहाँ सद्ग्रन्थ-रूपी सज्जनों और मित्रों की सङ्गति करनी चाहिये। सद्ग्रन्थों द्वारा हम संसार के एक से एक महात्मा की सङ्गति रात-दिन कर सकते हैं और उनसे जब चाहें तब तथा जितने मरतबे चाहें उतने मरतबे वार्तालाप कर सकते हैं और अपना 'यथेष्ट' समाधान कर सकते हैं। 'सद्ग्रन्थ इस लोक के चिन्ता-मणि हैं। सद्ग्रन्थों के पठन-पाठन से सब कुचिन्तायें मिट जाती हैं, संशय-पिशाच भाग जाता है और मन में सद्भाव जागृत होकर परम शांति प्राप्ति होती है। ज्ञानाग्नि से मनुष्य का सब पाप जल जाता है और मनुष्य पापात्मा से पुण्यात्मा और व्यभि-चारी से ब्रह्मचारी बन जाता है। ज्ञानानन्द के सामने विषयानन्द फीका पड़ जाता है। बिना सिद्धान्त-वाक्यों के श्रवण किये किसी का आचरण कदापि शुद्ध नहीं हो सकता। श्रवण की महिमा अपरम्पार है। बिना देखे और सुने किसी का उद्धार आज तक न हुआ है न होगा।

अत: हमें रोज प्रात:काल और सायंकाल किसी पवित्र ग्रन्थ की पवित्रता और एकाग्रतापूर्वक, शुद्ध जगह पर बैठ कर थोड़ा ही नियमित पाठ करने का नियम बाँध लेना चाहिये। पाठ को शान्ति और प्रसन्नता-पूर्वक पूरा किये बिना अन्न ग्रहण नहीं करेंगे—ऐसा एक निश्चय कर लेना चाहिये। इस प्रकार निश्चय कर लेने से मनुष्य के भीतर एक अद्भुत दैवी शक्ति जागृत होती है, जो कि उसे उन्नति के शिखर पर पहुँचा देती है।

गीता व रामायण का पाठ करना अत्यन्त उपकारी होगा। ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये योगवाशिष्ठ, वैराग्यमुमुक्षप्रकरण, उपदेशरत्नाकर, ज्ञान वैराग्य प्रकाश, श्रीरामकृष्ण, शंकराचार्यकृत प्रश्नोत्तर-मणिमाला, दासबोध,—यह पुस्तकें अति ही उपकारी हैं। इनका नित्य पाठ करना चाहिये। जैसे एक ही अन्न और जल रोज खाया और पिया जाता है वैसे ही जो कुछ पढ़ा है उसे ही बराबर पढ़ना और उसका खूब मनन करना चाहिये, इसी में हमारा उद्धार है।

उपन्यासः—उपन्यासादि शृङ्गार रसपूर्ण ग्रन्थ पढ़ना मानो अपने हाथ अपने मकान में दियासलाई लगाना है। शृङ्गारी पुस्तकें बड़े ब्रह्मचारी को भी व्यभिचारी बना देती हैं, अच्छे-अच्छे सच्चरित्र बालक बालिकायें भी कुग्रन्थों के पठन और श्रवण से दुश्चरित्र बन गयी हैं। अतः कुग्रन्थों का सर्वदा त्याग करो, अच्छे ग्रन्थों का पता अपने सुमित्रों और भाइयों से पूछो। मूर्खता से कोई कुग्रन्थ न पढ़ बैठो। कुग्रन्थ पढ़ना और विष खा लेना दोनों समान है अतः जिन्हें नीच पुरुष न बनना हो, जिन्हें महा-पुरुष बनना हो, उन्हें चाहिये कि वे आग्रहपूर्वक महापुरुषों के चरित्र ग्रन्थ पढ़ें।

चरित्र ग्रन्थः—चरित्र ग्रन्थों के पढ़ने से बड़े बड़े पापात्मा भी पुण्यात्मा बन गये हैं। मुर्दों में भी जीवन फूँक देते हैं, महा-पुरुषों के चरित्र ग्रन्थ इसके लिये चैतन्यामृत हैं। अतः जो अपना उद्धार चाहते हैं वे नित्य-प्रति धर्म-ग्रन्थ, नीति-ग्रन्थ, चरित्र-ग्रन्थ आदि पढ़ें पढायें, सुने सुनायें, क्योंकि सद्-ग्रन्थ ही धार्मिक-जीवन का भोजन हैं। सद्ग्रन्थ ही इस लोक के तारक मंत्र हैं और कुग्रन्थ ही काल के मारक यंत्र हैं।

"घर्षण-स्नान"

नियम छठा:—

वक्तव्यः—ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये मन और वाणी का पवित्र रहना अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि गन्दे शरीर से मन भी गन्दा बन जाता है। गन्दगी रोग का घर है। जो पुरुष रोगी है वह कभी ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। पुनः रोगी शरीर से दीन और दुनिया दोनों डूब जाते हैं। अतः शरीर को सदा शुद्ध व वलिष्ट बनाये रखना प्राणीमात्र का सब से प्रथम और मुख्य कर्तव्य है।

एक समय हमारी तरफ एक मनुष्य मोहर्रम में शेर बनाया गया था। शरीर में वारनिश मिलाया हुआ पीला रंग सर्वत्र पोत दिया गया था। दिन भर खेला-कूदा और रात को घर लौटा। थकावट के कारण जल्दी सो गया। सूर्योदय हुआ। ८–९ बजने पर भी नहीं उठा, तब लोग घबड़ा गये। पुकारने पर भी जब नहीं बोला तब लोगों ने किवाड़ तोड़ डाले और क्या देखते हैं कि वह मुर्दे की तरह अचल पड़ा है। तुरन्त डाक्टर को बुलाया। डाक्टर ने आते ही फौरन उस शेर को टारपेन तेल, गरम पानी और साबून से खूब रगड़ कर साफ किया। जब उस मनुष्य का शरीर स्वच्छ हुआ, चमड़े के सब छिद्र जब साफ खुल गये, तब कहीं १५ मिनट के बाद उसने गहरी साँस ली और आँखें खोली। अन्त में चंगा हो गया। इस दृष्टान्त से यह सिद्ध हुआ है कि नाक और मुंह से भी हमारे शरीर का चमड़ा कहीं अधिक साँस लेता है। चमड़े के छिद्र बन्द होने से नाक और मुँह खुले रहते

हुए भी हम जी नहीं सकते। अतएव प्रत्येक स्त्री पुरुष को चाहिये कि वह शरीर की स्वच्छता में कभी आलस्य न करे, घर्षण-स्नान रोज़ किया करे। घर्षण-स्नान से त्वचा के सब छिद्र खुल जाने के कारण भीतर के असंख्य दूषित पदार्थ पसीने के रूप में बड़ी आसानी से बाहर निकल जाते हैं और बाहर की शुद्ध हवा भीतर जाने से शरीर नीरोग बन जाता है। घर्षण-स्नान से मनुष्य अधिक तेजस्वी, नीरोग, निर्विकारी ब्रह्मचारी और दीर्घजीवी सहज में बन सकता है और गन्दापन से वह रोगी, विकारी, आलसी, विषयी और अल्पायु बन जाता है। सब जगह पवित्रता ही जीवन है व अपवित्रता ही मृत्यु है। हम लोग अक्सर काक-स्नान (कौवा स्नान) किया करते हैं। सिर पर १०-५ लोटे पानी डाल लिये और हो गया स्नान। शरीर मलने से कुछ मतलब नहीं। लेखक ने तो एक मनुष्य को केवल एक ही लोटे पानी में स्नान करते हुए देखा है। यह बहुत ही बुरा है। नतीजा यह होता है कि शरीर में का ज़हर बाहर नहीं निकलने पाता। पाखाना साफ नहीं होता है, जठराग्नि मन्द होने से खाना भी नहीं पचता, सदा अपच हुआ करता है। फिर भीतर के ज़हर को परम दयालु प्रकृति माता खुजली, दाद, फोड़ों के रूपों में शरीर के बाहर निकालने लगती है। रोग प्रकृति की स्पष्ट सूचनायें हैं और मनुष्य की दुरुस्तगी के अन्तिम इलाज हैं। इतने पर भी मनुष्य होश में न आये तो द्वार में इन्तज़ार करती हुई मृत्यु उसे चट से अपनी गोद में ले लेती है।

घर्षण-स्नान की शास्त्रीय विधिः—स्नान के लिये प्रातःकाल सब से अच्छा समय है। प्रातः स्नान से दिन भर बड़े आनन्द से बीतता है और आलस्य नष्ट होकर सम्पूर्ण शरीर चैतन्यमय

बन जाता है। अतएव स्नान सूर्योदय के पहले ही कर लेना चाहिये, जाड़े और बरसात में ८-१० या पन्द्रह मिनट और गर्मी में पूरा आधा घन्टा तक, जब तक कि मस्तिष्क पूरा ठण्डा न हो तब तक स्नान अवश्य करना चाहिये। स्वप्न-दोष से पीड़ित मनुष्य को तो शाम को दुबारा नहाना चाहिये। जहाँ तक हो ताजा और स्वच्छ शीतल जल मस्तिष्क पर खूब डालना चाहिये। स्नान के लिये कूप का जल सब ऋतुओं में अनुकूल होता है, जाड़े में गर्म और गर्मी में सर्द होता है। स्नान के लिये कूप में से जल अपने ही हाथ खींचो। उससे सीना और दण्ड पुष्ट हो जाते हैं' जाड़े में स्नान के पहिले १०-१२ दण्ड और २५-३० बैठक लगा लेने से जाड़ा नहीं मालूम होगा। परन्तु घर्षण-स्नान में जोर से रगड़ने से जो कुछ व्यायाम होता है, उससे शरीर में काफी गर्मी आ जाती है। स्नान के लिये पानी सदा ताजा स्वच्छ व विपुल रहे, इस बात का स्मरण रहे। स्नान के पहलें सब शरीर को सूखे तौलिया से व खुरखुरे वस्त्र से (मुलायम से नहीं) खूब जोर से रगड़ो, रगड़ने में कुछ कमी न करो और कुछ डरो भी मत। पर हाँ, उचित जगह पर उचित जोर लगाओ, नहीं तो मारे रगड़ों के आँख ही फोड़ लोगे। तौलिया से रगड़ने के बाद हाथ से रगड़ो। हाथ से रगड़ने से शरीर में एक बिजली पैदा होती है जो कि शरीर के तमाम रोगों को हटाती है। इस कारण शरीर का प्रत्येक अवयव अच्छी तरह से रगड़ना चाहिये। जहाँ संघर्षण न होगा उतनी ही जगह कमजोर और रोगी बनी रहेगी, यह बात ध्यान में रक्खो। पेट को ठीक रगड़ने से पेट के अनन्त विकार नष्ट होते हैं और पाखाना भी साफ होता है' स्नान के लिए बैठने पर गर्दन झुकाकर सबसे पहिले एक-दो लोटे

जल से सिर भिगोओ। यदि मस्तिष्क प्रथम न भिगोया जाय तो नीचे की तमाम गर्मी दिमाग में चढ़कर बड़ी ही हानि करेगी, स्मरणशक्ति नष्ट कर देगी, आँख की ज्योति बिगाड़ देगी, मन में काम विकार प्रबल होंगे और स्वास्थ्य भी नष्ट हो जायगा! इसी कारण "न च स्नायाद्विनाशिरः।" सब से प्रथम बिना शिर भिगोये व धोये स्नान कदापि न करना चाहिये, ऐसी सूत्रमय शास्त्राज्ञा है। इस शास्त्र-रहस्य को न जानने के कारण ही आज न मालूम कितने ही लोगों को मुफ्त में रोगी और अल्पायु बनना पड़ता होगा। अतएव सावधान रहो। गला, शिर भिगोने के बाद फिर पार के रक्खे हुये तौलिये से क्रमशः हाथ कंधे, सीना, पेट, पीठ, कमर, टाँग, पैर वगैरह खूब रगड़ो फिर शिर पर से सम्पूर्ण शरीर भर में यथेष्ट पानी उंडेलो। तत्पश्चात् सूखी तौलिया से सम्पूर्ण शरीर को पोंछ डालो (शरीर को साफ न पोंछने ही से गीलापन के कारण मनुष्य को अक्सर दाद, खुजली वगैरह हुआ करती है और खुजलाते खुजलाते लड़कों को बुरी आदतें लग जाती हैं) फिर धोती यों ही लपेट कर खुली प्रकाशमय जगह में सूर्य-स्नान अर्थात् सूर्य के किरण शरीर पर लेते हुये थोड़ी देर इधर-उधर टहलो। शरीर पूरा सूख जाने के बाद फिर धोती पहन कर अपने धन्धे में लग जाओ। देखो, एक ही दिन के 'घर्षण स्नान' से आपके शरीर में क्या ही उत्साह, आनन्द, फुर्ती और कान्ति दिखाई देती है? हमारा मुख अन्य सब अवयवों की अपेक्षा जो इतना सुन्दर और तेजस्वी दिखाई देता है, इसका मुख्य कारण घर्षण-स्नान ही है। यदि एक ही दिन में घर्षण-स्नान से मनुष्य में इतना आनन्द, उत्साह, आरोग्य, शान्ति व कान्ति दिखाई देती है, तो नित्यप्रति इस प्रकार विधिपूर्वक

घर्षण-स्नान करने से मनुष्य का आनन्द, उत्साह, आरोग्य शान्ति व कान्ति और भी अधिक बढ़ेगी इसमें सन्देह ही क्या है ?

स्नान के कुछ शास्त्रीय नियम—(१) रोज दो मरतबे स्नान करना अच्छा है। गर्मी के दिनों में तो हमको दो मरतबे स्नान करना ही चाहिये। क्योंकि दिन भर के पसीने के कारण शरीर से बड़ी ही बदबू निकलने लगती है। पसीने में बहुत ज़हर होता है, यह बात ध्यान में रखो (२) महीने में एक मरतबे गर्म पानी और साबुन या सोड़ा से नहाना ही स्वास्थ्यप्रद होता, है त्वचायें और भी साफ हो जाती हैं। परन्तु रोज़ गर्म पानी से नहाना अच्छा नहीं है। यह अप्राकृतिक है। उससे मनुष्य कमज़ोर, नाजुक, चंचल व विषयी बन जाता है। नित्य गर्म पानी से नहाना ब्रह्मचर्य के लिये बहुत हानिकारक है। (३) नदी और तालाब का स्नान और भी अच्छा होता है। शास्त्र में समुद्र-स्नान की महिमा सबसे अधिक है क्योंकि समुद्र जल में एक प्रकार की बिजली होने के कारण मनुष्य अधिक नीरोग और चैतन्यमय बन जाता है। यदि घर के पानी में भी समुद्र का नमक मिलाकर स्नान किया जाय तो उससे भी विशेष फायदा होता है। बाद में शुद्ध जल से स्नान कर लेना चाहिये। (४) तैरने में सभी अवयवों को व्यायाम होता है, सीना पुष्ट और विस्तीर्ण होता है। फेफड़े शुद्ध और बलवान होते हैं और सम्पूर्ण शरीर नीरोग फुर्तीला, सुदृढ़ दमदार, उत्साही और शक्तिशाली बनता है। परन्तु तैरना नियमपूर्वक चाहिये, तैरना अपने और दूसरों की प्राणरक्षा के लिये एक बहुत ही अच्छी कला है। क्या डूबते समय हमारी किताब काम देगी ? कदापि नहीं ! अतः इस हुनर को

स्वास्थ्य की दृष्टि से हर किसी को अवश्य सीख लेना चाहिये। (५) स्नान भोजन के पहले व बाद में तीन घन्टे के अन्तर पर करना चाहिये। नहाने के बाद तुरन्त भोजन करने से अथवा भोजन के बाद तुरन्त नहाने से पित्त बढ़ जाने के कारण पाचन क्रिया बिगड़ जाती है। जिससे कि रोग व मानसिक विकार उत्पन्न होते हैं। अतएव सावधान रहो। (६) रोगी, दुर्बल व नाजुक मनुष्य को हफ्ते में ताज़ा ठण्डे जल से ज़रूर नहाना चाहिये और बहुत धीरे धीरे ठण्डे जल से नहाने का अभ्यास डालना चाहिये। (७) तौलिया से रगड़ने और थोड़ी सी कसरत करने पर भी यदि बहुत ही जाड़ा मालूम होता हो, तो हमें स्नान हरगिज़ न करना चाहिये। (८) स्नान की जगह एकान्तपूर्ण खुली हवादार प्रकाशमय होनी चाहिये, स्नान के समय शरीर पर जितने ही कम कपड़े होंगे उतना ही अच्छा है, क्योंकि खुले शरीर पर सर्दी गर्मी असर नहीं कर सकती। लंगोट पहिन कर नहाना बहुत अच्छा है, घर पर एकान्त में विवस्त्र नहाना सबसे अच्छा है, जलाशय में नहीं। यद्यपि नंगा नहाना पाश्चात्यों ने पसन्द किया है तथापि वह भारतीय सभ्यता के सर्वथा विरुद्ध है। भारतीयों के लिये लंगोट सहित नहाना ही सर्व श्रेष्ट है। (९) वीर्यपात होने के बाद तुरन्त नहा लेना चाहिये।

जापानी लोग घर्षण-स्नान का महत्व भोजन से भी अधिक मानते हैं और इसी कारण आज वे इतने उत्साही, दीर्घायु और सब बातों में तेजस्वी दिखाई देते हैं! परन्तु हम लोग उन्हीं के भाई मुर्दों के समान निर्वीर्य गोबरगणेश दिखाई दे रहे हैं। यह कितने शोक और लज्जा की बात है? अब हमें अवश्य ही जागना चाहिये और हमेशा उन्नतिप्रद काम करने चाहिए। सब उन्नति

का मूल शरीर है। अतः उसे पहले सुधारना चाहिये। योंही हाथ घुमाने से जैसे कोई वर्तन (पात्र) साफ नहीं हो सकता, उसे ज़ोर से ही रगड़ना पड़ता है, तद्वत् शरीर रूपी बर्तन भी, वगैर घर्षण-स्नान के बाहर भीतर से साफ और चमकीला नहीं हो सकता। काक-स्नान से मनुष्य सदा रोगी, मलीन, आलसी विषयी, निस्तेज और अल्पायु होता है। परन्तु वही मनुष्य यदि घर्षण-स्नान आज ही से शुरू कर दे, तो थोड़े ही दिनों में पूर्ण नीरोगी, निर्विकारी, उत्साही व तेजस्वी बन सकता है। ब्रह्मचर्य तथा दीर्घ जीवन के लिये घर्षण-स्नान अत्यन्त आवश्यक और अमृत तुल्य है।

"सादा व ताजा अल्पाहार"

नियम सातवाँ—

वक्तव्य—ब्रह्मचर्य और भोजन में अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। भोजन के महत्व को बहुत लोग नहीं जानते, इस कारण उन्हें अत्यन्त दुःख उठाना पड़ता है। जिसे ब्रह्मचारी बनना है उसको सादा और अल्पाहारी अवश्य ही बनना होगा। अधिक भोजन करने वाला सात जन्म में भी ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। क्योंकि ज़ोर की आँधी जैसे पेड़ों को उखाड़ डालती है, वैसे ही कामदेव पेटू मनुष्य को पटक पटक कर मार डालाता है। अधिक भोजन

करने वाला पुरुष किसी हालत में वीर्य नहीं रोक सकता है। उसका चित्त सदा विषय की ओर लगा रहता है। मन और तन दोनों रोगी बन जाते हैं, आयु घट जाती है और स्वार्थ व परमार्थ दोनों मटियामेट हो जाते हैं। यदि आपको वीर्यवान् व आरोग्यवान बनना हो स्वप्नदोष से और अकालमृत्यु से बचना हो तो आपको अवश्य ही सादा और अल्पाहारी बनना होगा।

एक समय ईरान के बादशाह बहमन ने एक श्रेष्ठ वैद्य से पूछा "दिन-रात में मनुष्य को कितना खाना चाहिये ?" उत्तर मिला "सौ दिरम अर्थात् ३९ तोला।" फिर पूछा--"इतने से क्या होगा ?" हकीम बोला, "शरीर पोषण के लिये इससे अधिक नहीं चाहिए।" इसके उपरान्त जो कुछ खाया जाता है वह सिर्फ बोझ ढोना और उम्र को खोना है।

यह सिद्धान्त है कि आहार, निद्रा, भय, मैथुन, क्रोध, कलह आदि बातें जितनी बढ़ाई जाँय उतना ही बढ़ती जाती हैं और जितनी कम की जाँय उतनी कम होती जाती हैं। भगवान् बुद्ध कहते हैं; एक बार हलका आहार करने वाला "महात्मा" है, दो बार सम्हल करके खाने वाला बुद्धिमान व भाग्यवान् है, और इससे अधिक बेअटकल खाने वाला महामूर्ख, अभागा और पशु का भी पशु है। सच है गले तक खूब ठूस ठूस करके खाना और फिर पछताना कौन बुद्धिमानी है ? ये क्या भाग्यवान् के लक्षण हैं ? भोजन सुख के लिए खाया जाता है या दुख के लिए ? जिस भोजन से दुःख ही उपजता है उस भोजन को विष तुल्य ही समझना चाहिये। 'भोजन तारता भी है और मारता भी है।'

अधिक भोजन से मनुष्य जीते जी ही मुर्दा और बेकार बन जाता है। भक्तदास वामन कहते हैं:—

"अधिक वायु के भरन से, फूटबाल फट जाय।
बड़ी कृपा भगवान् को, पेट नहीं फट जाय" ॥१॥
"यदपि न दीखत पेट फटा, फटत मनुज की देह।
रोग भयंकर होत है, बने नरक का गेह" ॥ १ ॥

अतः तन्दुरुस्ती के लिये खाओ, रोगी बनने के लिये मत खाओ। जो कुछ खाओ जीने के लिये खाओ, मरने के लिये मत खाओ। बहुत भोजन करने वाला बहुत जल्द मरता है। अमेरिका के प्रसिद्ध डाक्टर म्याकफ्याडन कहते हैं:-'आजकल साधारणतः लोग भोजन के बहाने जितने पदार्थों का सत्यानाश करते हैं उनके चतुर्थांश से ही उनका काम बड़े आनन्द से चल सकता है। अकाल में अन्न के अभाव से लोग उतने नहीं मरते, जितने कि सुकाल में अधिक अन्न खाने से तरह तरह के रोगों से मर जाते हैं।" देश में दुष्काल भी पेटू लोगों की ही कृपा से पड़ता है। अतः पेटू मनुष्यों को स्वयं अपना तथा देश का भी बैरी समझना चाहिये।

अरेरे! ग़रीब लोग बेचारे भोजन न मिलने से मरते हैं और धनी तथा पेटू लोग अधिक खाने से मरते हैं, केवल मध्यम प्रकार के मिताहारी पुरुष ही ब्रह्मचारी और दीर्घजीवी हो सकते हैं! देश में प्लेग, कालरा भी पेटू लोगों के ही कारण होते हैं, क्योंकि पेटू मनुष्य बहुत गन्दे होते हैं। कमाना खाना और पाखाना ये ही उनके इस संसार के तीन मुख्य काम होते हैं और अन्त में वे

खाते खाते ही मर जाते हैं। पेटू मनुष्य सदा दुःखी, आलसी, रोगी और अल्पायु बना रहता है। देश में जब कोई रोग फैलता है, तब पेटू मनुष्य सब से पहले काल का शिकार बन जाता है और इस बात का अनुभव हैज़ा के दिनों में प्रत्यक्ष होता है। हैज़ा की बीमारी सब से पहले अधिक भोजन करने वालों ही को होती है, केवल अल्पाहारी पुरुष ही बच सकते हैं। अतः सज्जनो! अधिक भोजन करना—परोपकार के लिये नहीं तो स्वार्थ के लिये अर्थात् अपने उद्धार के लिये—अवश्य छोड़ दो। सिर्फ़ जितना पचा सकते हो उतना ही खाओ, इससे एक भी कवर ज़्यादा खाना मानों अपनी आयु का एक एक दिन कम करना और अकाल में काल के मुँह जाना है। श्री मनु महाराज कहते हैं:—

अनारोग्यं अनायुष्यं अस्वर्ग्यं चाऽतिभोजनं।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्॥

"अति भोजन रोगों को बढ़ाने वाला, आयु को घटानेवाला, नरक में पहुँचाने वाला, पाप को करने वाला और लोगों में निन्दित करने वाला है (यानी फलां मनुष्य बड़ा पेटू है इस प्रकार की बदनामी करने वाला है) अतः बुद्धिमान् को चाहिये कि किसी बढ़िया पदार्थ के फेर में पड़कर ज़रूरत से अधिक कदापि न खाये। क्योंकि वैसा करना पूर्ण अधर्म है। पेटू मनुष्य आत्म-हत्यारा कहा जाता है। पेटू मनुष्य की धर्म-बुद्धि बिलकुल नष्ट हो जाती है और वह हठात् पापकर्मों में प्रवृत्त होता है। सम्पूर्ण पाप की जड़ अधिक भोजन करना ही है। अधिक भोजन ही से काम, क्रोध रोगादि अधिक प्रबल बन जाते हैं और कम भोजन

से वे कमज़ोर बन जाते हैं। इसी गंभीर सिद्धान्त को जानकर महर्षियों ने शास्त्रों में उपवास का महत्व वर्णन किया है।

भक्तदास वामन प्रश्नोत्तर में कहते हैं:—निकम्मा कौन है? पेटू। महापुरुष की क्या पहचान है? जो अपने को सब से छोटा समझते हों। महापुरुष कैसे बनें? मन को वश में करने से। मन कैसे वश में होय? कम खाने से। कम खाना कैसे सीखें? आहार को थोड़ा थोड़ा घटाने से। आहार कैसे घटे? रोज सादा और प्राकृतिक भोजन करने से। सादा भोजन कैसे प्रिय लगे? भूख के समय खाने से और प्रत्येक ग्रास (कवर) को खूब अच्छी तरह चबाने से। भूख का समय कैसे जानें? नियम बाँध लेने से और फिर बीच में कुछ भी न खाने से।"

सचमुच प्रकृति के अनुसार चलने ही से हम पेटूपन से और तज्जन्य अत्यन्त विकारों से बच सकते हैं। भोजन में सौ प्रकार रहने से मनुष्य अक्सर ज्यादा खा लेता है और फिर सौ प्रकार से सौ विकार अवश्य ही उत्पन्न होते हैं।

आस्ट्रेलिया से प्रसिद्ध डाक्टर हर्न कहते हैं:—मनुष्य जितना खा लेता है उसका तिहाई हिस्सा भी नहीं पचा सकता। बाकी पेट में रह कर रक्त को विषैला बनाकर असंख्य विकार पैदा करता है; जिससे कि प्राण-शक्ति का दोहरा नाश होता है। एक तो इस फालतू भोजन को पचाने में और दूसरे उसको बाहर निकालने में।"

यदि मनुष्य भोजन कम प्रकार के खाय, नमक-मिर्च मसाला से रहित सात्विक भोजन करे, प्रत्येक ग्रास को खूब महीन पीस कर, चबाकर खाय, शान्ति रक्खे और जितना पचा सके उतना

ही खाय तो वह ब्रह्मचर्य को बड़ी आसानी से धारण कर सकता है और १०० वर्ष तक जीवित रह सकता है। इसी के बल पर सुप्रसिद्ध अमेरिकन यंत्रकार एडिसन कहते हैं, "मैं सौ वर्ष पर्यन्त अवश्य जीवित रहूँगा।"

"If you can conquer your tongue only, you are sure to conquer your whole body and mind at ease" यदि तुम सिर्फ जिह्वा को वश में करो तो तुम्हारे मन व शरीर अनायास वश में हो जाँयगें इसमें कोई सन्देह नहीं है। जिह्वा को संस्कृत में रसना कहते हैं। क्योंकि वह श्रृंगार, वीर, शान्त आदि सभी नव-रस को उत्पन्न करने वाली है। सात्विक भोजन से शान्तरस उत्पन्न होता है, राजसी भोजन से श्रृंगार रस, तामसी भोजन से वीभत्स, रौद्रादि रस उत्पन्न होता है। जो रस अधिक बलवान होता है सम्पूर्ण रस उसी के अधीन हो जाते हैं। इसीलिये कहा है:—

आहारशुद्धोसत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।

स्मृतिलब्धे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः॥ छान्दोग्य उपनिषद्॥

"अर्थात् आहार की शुद्धि से सत्व की शुद्धि होती है, सत्व शुद्धि से बुद्धि निर्मल और निश्चयी बन जाती है, फिर पवित्र व निश्चयी बुद्धि से मुक्ति भी सुलभता से प्राप्त होती है।, अतः जिन्हें काम क्रोधादि से मुक्त होना है—उन पर विजय प्राप्त करना है-उन्हें चाहिये कि वे नित्य नियमित समय पर सात्विक अल्पाहार किया करें; क्योंकि कहा है 'As a man eateth so he becometh' जैसा मनुष्य भोजन करता है वैसा ही बन जाता है। यदि मनुष्य दो साल पर्यन्त लगातार सादा अर्थात्

सात्विक अल्पाहार किया करेगा तो उसकी कुबुद्धि आप से आप नष्ट हो जायगी और उसमें ईश्वरीय तेज प्रगट होने लगेगा। कुछ ही दिन तक अभ्यास करके देख लीजिये।

सात्विक आहारः—जो ताज़ा, रसयुक्त, हलका, स्नेहयुक्त, स्थिर (nutritious) मधुर प्रिय हो। जैसे गेहूँ, चावल, जौ, साठी, मूँग, अरहर, चना, दूध, घी, चीनी, सेंधा नमक, रताल, (शकरकंद) शुद्ध व पके फल, इनको सात्विक आहार कहते हैं।

राजसी आहारः—अत्यन्त उष्ण, कडुआ, तीता, नमकीन; अत्यन्त मीठा, रूखा, चरपरा, खट्टा, तैलयुक्त, दोषयुक्त, गरिष्ट, जैसे पूड़ी, कचौड़ी, मालपुआ, मिठाई, खट्टा, लालमिर्च, तेल, हींग, प्याज, लहसुन, गाजर, उरद, मसूर, सरसों, मसाला, मांस, मछली, कछुआ, अंडा, शराब, चाय, काफी, डाफी, कोकेन, चरस, चंडू, इनको राजसी आहार कहते हैं।

राजसी आहार से मन चंचल, कामी, क्रोधी, लालची और पापी बन जाता है; रोग शोक, दुख, दैन्य बढ़ते हैं और आयु, तेज सामर्थ्य और सौभाग्य वेग के साथ घट जाते हैं। राजसी पुरुष कदापि ब्रह्मचारी नहीं हो सकता।

तामसी आहारः—तामसी आहार में राजसी आहार तो आता ही है; परन्तु उसके अलावा जो, बासी, रसहीन, गला हुआ, दुर्गन्धित विषम (जैसे एक ही साथ तेल के व घी के पदार्थ खाना वगैरह), घृणित व निन्द्य होता है; इसको "तामसी आहार" कहते हैं।

तामसी आहार से मनुष्य प्रत्यक्ष राक्षस बन जाता है। ऐसा पुरुष सदा रोगी, दुखी, बुद्धिहीन, क्रोधी, लालची,

आलसी, दरिद्री, अधर्मी, पापी और अल्पायु बन अन्त में नरक-गामी होता है (गीता अ० १७ देखो)।

अतः जिन्हें ब्रह्मचर्य का पालन कर अपना उद्धार करना है, उन्हें चाहिये कि राजसी व तामसी आहार को छोड़कर दैवी तेज बढ़ाने वाला सात्विक अल्पाहार आज ही से शुरू कर दे। परन्तु यह ध्यान में रहे कि सात्विक भोजन भी वासी हो जाने पर तामसी बन जाता है और अधिक खा लेने से राजसी। इतना ही नहीं बल्कि प्राण हरण करने वाला महान तामसी भी बन जाता है, अतः अल्पाहार सात्विक आहार कहा जा सकता है।

"भोजन अच्छी तरह से कुचल कुचल कर खाना" यह प्रकृति का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। इससे मामूली भोजन भी अत्यन्त मिष्ट व पुष्ट मालूम होता है। पचता भी है मज़े में पाखाना भी साफ होता है, भोजन भी कम लगता है और इस प्रकार दैहिक, आर्थिक तथा देश की दृष्टि से भी अधिक लाभ होता है। परन्तु जल्दी जल्दी खाने से मनष्य सदा दुःखी मलीन, कामी, पेटू, अतृप्त, रोगी, उदासीन, क्रोधी, चिड़चिड़ा और अल्पायु बना रहता है। बदहज़मी और कब्जियत भी इसी से हुआ करती है। जल्दी दाँत टूटने का भी यही कारण है। पशुओं के दाँत अन्त तक नहीं टूटते, इसका मुख्य कारण "चर्वित चर्वण" ही है। अतः दाँत से योग्य काम लो; क्योंकि पेट के दाँत नहीं होते। दाँत कुछ दिखलाने के लिये नहीं दिये गये हैं। यदि मनुष्य प्रत्येक ग्रास ३०-४० बार अथवा प्रकृति के हिसाब से बत्तीस दाँत के लिये बत्तीस बार खूब चबा चबा के खावेगा तो आज वह जितना भोजन करता है उसके तिहाई भोजन ही में

उनकी पूरी तृप्ति हो जायगी और प्राणशक्ति का भी बहुत कम नाश होगा; भोजन भी बहुत जल्द पचेगा; पाखाना भी साफ़ होगा और इन्द्रिय-दमन की भी शक्ति उसे बहुत जल्दी प्राप्त होगी। लेखक का यह स्वयं अनुभव है। इसे कोई भी आज़मा सकता है।

भोजन बिना अच्छी तरह चबाये जो जल्दी से खा लेते हैं, वे जल्दी ही मर जाते हैं। चर्वित चर्बण से भोजन के प्रत्येक परमाणु से मनुष्य प्राणत्व को (जो कि प्राणिमात्र के जीवन का मुख्य आधार है उसको) ब्रह्म की भावना से विशेष खींच सकता है। अतः "अन्नं ब्रह्म त्युपासीत" अन्न में ब्रह्म दृष्टि रक्खो और "अन्न दृष्ट्वा प्रणम्यादौ।" अन्न को प्रथमतः प्रणाम करके फिर भोजन किया करो। योगी लोग ऐसे ही करते हैं और इसी कारण वे थोड़े ही भोजन में तृप्त हो जाते हैं और उनमें ब्रह्म-भावना के कारण दैवी सामर्थ्य प्रकट होता हुआ स्पष्ट दिखाई देता है। अमीरी भोजन करना मानों साक्षात् साँप पर पैर रखना है। ऐसे लोगों में काम क्रोध का विष बहुत ज्यादा फैला हुआ रहता है। इस बात का पता धनी लोगों पर दृष्टि डालने से तत्काल लग जाता है। धनी लोगों का यह एक विचित्र ख्याल है कि "जो कुछ वीर्य नष्ट किया जाता है यह हलुआ, पूड़ी, रबड़ी उड़ाने से फिर वापिस मिलता है।" परन्तु यह उनकी बड़ी भारी मूर्खता है। जो भोजन बड़े बड़े पहलवानों से भी बिना खूब कसरत किये नहीं पच सकता, वह गरिष्ठ-भोजन दिन रात निठल्ले बैठे हुये और अधिक भोजन से और भोग-विलास के कारण जिनकी आँतें बेकाम हो गई हैं उनको कैसे पच सकता है? "धातुक्षयात् स्रुते रक्ते मन्दः संजयातेऽनलः।";

यानी धातु के नाश से रक्त कमजोर हो जाता है और रक्त कमजोर हो जाने से अग्नि यानी भूख भी मन्द पड़ जाती है। यह आयुर्वेद का सिद्धान्त है, अर्थात् पुष्ट और उत्तेजित भोजन से ऐसे लोगों का रहा सहा वीर्य और भी उछल पड़ता है और वे अधिकाधिक बरबाद होते जाते हैं। तिस पर भी वे सूखी हड्डी के चबाने वाले और अपने ही मुख से निकले हुए रक्त को उस सूखी हड्डी से निकला हुआ समझने वाले मूर्ख कुत्ते की तरह, अपने पहले ही वीर्य को मालपुआ से प्राप्त हुआ समझते हैं। वाह! खूब अकलमन्दी! भक्त दास वामन कहते हैं—

पालो पत्ती खाँय जो उन्हें सतावे काम !
नित प्रति हलुवा निगलते उनकी जाने राम ॥

अतः जिन्हें वीर्य की रक्षा करनी है उन्हें चाहिये कि वे मिठाई, खटाई, नमक, मिर्च, मसाला से सर्वथा बचे रहें। सदा सस्ता, सादा, स्वच्छ और स्वल्प भोजन किया करें। नमक, मिर्च, मसाला ये बड़े कामोत्तेजक पदार्थ हैं! लाल मिर्च तो ब्रह्मचर्य के लिये प्रत्यक्ष काल ही है। अतः उन्हें धीरे धीरे कम करके सर्वथा शीघ्र त्याग दें। अभ्यास से कोई भी बात असम्भव नहीं है। निश्चय होने पर सभी बातें सहल हैं।

योगी लोग नमक, मिर्च मसालादि नहीं खाते, अनभ्यास के कारण उन्हें वे अच्छे ही नहीं लगते। यदि तुम्हें योगी अर्थात् सुखी बनना हो, वियोगी अर्थात् दुखी न बनना हो तो तुमको भी उन्हीं की तरह सात्विक अल्पाहार खूब कुचल

कुचल के करना होगा। उन्हीं की तरह प्राकृतिक आहार करना होगा। जो चीज़ जिस हालत में पैदा हुई हो उसे वैसे ही खाने से भोजन भी कम लगता है और फायदा भी खूब होता है। ज्यों ज्यों उसका रूप बदलता जाता है, त्यों त्यों वह चीज आरोग्य के लिये हानिकर होती जाती है। कच्चे गेहूँ, चना खाना अधिक फायदेमन्द है, क्योंकि इसमें प्राणशक्ति कूट कूट कर भरी रहती है और भोजन भी कम लगता है। परन्तु बचपन ही से आँतें दुर्बल हो जाने के कारण मनुष्य उसे बिना पकाये पचा नहीं सकता। अन्न को पकाने से प्राणशक्ति नष्ट हो जाती है और इसी कारण अधिक भोजन करने पर भी मनुष्य की तृप्ति नहीं होती और वह अन्यान्य रोगों से पीड़ित हो जाता है। पूड़ी, कचौड़ी आदि तले हुये पदार्थों की प्राणशक्ति तो और भी जल जाती है। इसलिये जहाँ तक हो प्राकृतिक आहार ही करना सर्वश्रेष्ठ है। मैदे से भूसीयुक्त आटा श्रेष्ठ, भूसी युक्त आटा से दलिया श्रेष्ठ, दलिया से उबले हुए गेहूं श्रेष्ठ, उबले हुये गेहूं से कच्चे गेहूँ और जौ श्रेष्ठ, कच्चे गेहूं, चावल, चना इत्यादि से दुग्धाहार श्रेष्ठ और दुग्धाहार से पके ताजे फल श्रेष्ठ हैं।

फलाहारः—फलाहार अत्यन्त प्राकृतिक और प्राणशक्ति से परिपूर्ण आहार है। फल में सूर्यतेज और विजली बहुत ही भरी रहती है। इस कारण फलाहारी को सहसा कोई भी रोग नहीं हो सकता। फलाहार से बुद्धि अत्यन्त तीव्र होती है। वीर्य की वृद्धि होती है और काम विकार दब जाते हैं! हमारे पूर्वज ऋषि मुनियों का कन्दमूल फलाहार ही मुख्य आहार था और इसी कारण वे इतने तेजस्वी, बुद्धिमान, शान्त, ब्रह्मचारी और

दैवी सामर्थ्य से सम्पन्न थे, जिनके ज्ञान को देखकर सारी दुनिया आज भी हैरान हो रही है। हम उन्हीं की सन्तान आज बेवकूफ बन बैठे हैं। यह सब प्राकृतिक नियमोल्लङ्घन से प्राप्त निर्वीर्यता का ही दुष्ट व अनिष्ट प्रभाव है। अतः जिन्हें अपने पूर्वजों की तरह पुनः सदाचारी, ब्रह्मचारी, बुद्धिमान और सामर्थ्य-संपन्न होना है, उन्हें चाहिये कि जहाँ तक हो "प्राकृतिक आहार" करें। भोजन सदा ताजा, स्वच्छ, सस्ता, हलका, सादा और अल्प ही किया करें। प्रत्येक ग्रास को खूब चबा चबा कर खायें, नमक, मर्च, मसाला, मिठाई, खटाई से हमेशा दूर रहें और सदा ऊँचे व पवित्र विचार करें। फिर देखो तुम्हारे शरीर व चेहरे पर क्या ही रौनक आती है और तुम्हारी आत्मा कैसी तेजस्वी व बलिष्ठ होती है।

रंगचिकित्सा—(Cromopathy) से यह सिद्ध हुआ है कि शीशियों के 'बनावटी' रंग से सूर्य किरणद्वारा पानी पर जो अद्भुत परिणाम होता है उससे असंख्य रोग नष्ट हो जाते हैं; तब फिर फलों के कुदरती रंग द्वारा भीतर रस पर सूर्यप्रकाश और बिजली का असर पड़ने से वे फल अमृतसंजीवनी तुल्य बनते हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? फलाहार के बारे में जितना वर्णन किया जाय उतना ही थोड़ा है। फलाहार भी दो प्रकार का होता है:--

फल में—अंजीर, अंगूर, संतरा, पपीता, अमरूद, आम, नासपाती, सेव, बेल, शरीफा, मीठा खट्टा दोनों नीबू ये सस्ते व अच्छे फल होते हैं।

मेवा में—किशमिश, बादाम, पिस्ता, अखरोट, काजू, गिरी, मुनक्का, बेल-बीज, छोहारा, सूखे, अंजीर, ये अच्छे होते हैं।

परदेश से स्वदेश की ही चीज़ श्रेष्ठ लाभकारी है। अतः फल की जगह आलू, कन्द, ककड़ी, पक्का कोंहड़ा और शाक भाजी भी काम में लाई जा सकती है।

श्री लक्ष्मणजी ने चौदह वर्ष पर्यन्त फलाहार ही किया था। इसी कारण वे हनुमानजी की तरह अखण्ड ब्रह्मचारी रह सके और उनका सामर्थ्य और तेज श्रीरामचन्द्रजी से भी अधिक बढ़ गया था। अस्तु; जिन्हें फलाहार शुरू करना हो; वे धीरे धीरे शुरू करें! प्रथम कुछ दिन तक नमक, मिर्च, मसाला से रहित भोजन का अभ्यास करें; फिर एक मरतबे सादा अल्प भोजन तथा दूसरे मरतबे अल्प फलाहार करें, कुछ दिन के बाद फिर शुद्ध फलाहार करने लग जायँ; एकदम कोई काम करने से लाभ के बदले हानि ही होती है, यह बात हमेशा ध्यान में रक्खो।

दुग्धाहारः—दुग्धाहार फलाहार से घटिया परन्तु अन्नाहार से बढ़िया आहार है। दूध घर का और तिस पर भी काली गौ का श्रेष्ठ होता है। काली गौ को "कपिला" या "कामधेनु" कहते हैं। गौ का न हो तो काली भैंस का दुध लेना चाहिये। दूध वाली गाय व भैंस वा बकरी नीरोग व शुद्ध पदार्थ खाने वाली होनी चाहिये। अन्यथा रोगी व अशुद्ध पदार्थ खाने वाली गाय, भैंस व वकरी का दूध पीने से मनुष्य को भी वे रोग विना हुये कभी नहीं रहेंगे, यह बात स्मरण रहे। बाजारू दूध पीने से मनुष्य बहुत जल्द रोगी बनता है; क्योंकि उसमें रास्ते की धूल और गन्दी हवा के असंख्य ज़हरीले कीड़े पड़ जाते हैं यही हाल मिठाई का भी होता है। रोज़ हलवाई एक अंजुली भरी हुई बर्रें, मक्खियाँ, चींटे, दूध और मिठाई इत्यादि

में से प्रातःकाल निकाल के फेंकता है और उसी को औटा कर लोगों को पूरे दाम पर मज़े में बेंचता है। अतः बाजारू कोई भी बनी-बनाई चीज़ विशेषतः पतली चीज़ तो कदापि न खानी चाहिये। हलवाई वगैरों का गन्दापन तो मशहूर ही होता है। उनकी पोशाक देखकर ही जी मचलाने लगता है। भला ऐसे गन्दे लोगों के हाथ के, गन्दे प्रकार से बने हुए, पदार्थ खा पी कर कौन आरोग्य-सम्पन्न व दीर्घायु हो सकता है। होटल तो मानो मनुष्य के आयु-आरोग्य को "अच्छे ढङ्ग" से जलाने वाले मूर्तिमन्त स्मशान ही हैं।

धारोष्ण (तुरन्त का दुहा हुआ) और छना हुआ दूध सर्वोत्कृष्ट होता है। दूध विना कपड़छान किये कभी न पियो गरम करने से दूध की प्राणशक्ति बहुत नष्ट होती है। अत; दूध ताजा ही पीना अच्छा है। धारोष्ण दूध से वीर्य बहुत ज्यादा तथा तत्काल बढ़ता है और मन भी शान्त व प्रसन्न रहता है। फल में दूध से अधिक वीर्य उत्पन्न करने की शक्ति होती है। दुहने के आधा घण्टा बाद दूध में विकार उत्पन्न होते हैं। अतः ऐसा ठण्डा दूध फिर उबाल कर ही पीना चाहिये। गरम दूध पीने से पेट और भी साफ़ होता है। दूध ठंढी आंच पर गरम करना बहुत ही लाभदायक है। दूध धीरे धीरे जैसे बच्चा माता का दूध पीता है वैसे पीना चाहिये। इस प्रकार थोड़ा-थोड़ा पीने से एक पाव-भर दूध सेर भर दूध पीने के बराबर होता है। और गटर-गटर पीने से एक सेर दूध भी पाव भर की बराबरी नहीं कर सकता। क्योंकि दूध जल्दी पी लेने से उसका एकदम दही बन वह पेट के भीतर ही भीतर फट जाता है—ख़राब हो जाता है। परन्तु थोड़ा-थोड़ा पीने से—मुख में थोड़ी देर

रख कर फिर पेट में उतारने से उसका सब सार खिंच जाता है और कुछ भी बेकार नहीं जाता है। कोई भी चीज़ जल्दी से खाना मानो रोगी बन कर जल्दी ही मरने की तैयारी करना है। अतएव सावधान !

मांसाहारः—मांसाहार सब से अधम और राक्षसी आहार है। मांसाहारी लोग बहुत विकारी होते हैं। क्योंकि मांस उनका आहार है ही नहीं। मांस जंगली दुष्ट पशुओं का तथा निशाचरों का आहार है। गाय, घोड़ा, बैल, बन्दर, मांस को छू तक नहीं सकते। पर वाह रे मनुष्य ! जंगली नीच जानवरों से भी नीच हो गया है। मांसाहारी पुरुष सदा चञ्चल, क्रोधी व कामी बना रहता है और इस बात का पता शेर, तेन्दुआ, चीता इत्यादि मांसाहारी पशुओं की तरफ देखने से फौरन लग जाता है। वे पशु पिंजड़े में हर वक्त इधर उधर चक्कर लगाया करते हैं और लोगों की तरफ चञ्चल व क्रूर दृष्टि से देखा करते हैं। परन्तु वही शाकाहारी गाय से लेकर हाथी तक को देखिये कितने शान्त और निर्विकारी होते हैं। मांसाहारी पुरुष का ब्रह्मचारी होना मुश्किल तो है ही, परन्तु असम्भव भी है। अपवाद (exception) को लेना मूर्खता है। अतः जिन्हें ब्रह्मचारी और सदाचारी बनना हो, उन्हें चाहिये कि वे मांसाहार को सर्वदा एकदम त्याग दें।

सच्चा आहारः—पहले यह कह आये हैं कि भोजन और बुद्धि का परस्पर बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है। सात्विक आहार से बुद्धि भी निस्सन्देह सात्विक ही बन जाती है। पर हाँ, भोजन के समय उच्च, पवित्र, शान्त और ब्रह्मचर्य विषयक विचार अवश्य ही करने चाहिये। क्योंकि उच्च और निर्मल

विचार ही आत्मा का सच्चा आहार है। यदि सात्विक आहार के साथ में सात्विक विचार न किये जाँय, दुष्ट और अधर्मी विचार रक्खे जाँय तो भोजन का वह सात्विक परिवर्तन सर्वथा व्यर्थ ही समझना चाहिये। भोजन के समय जैसे विचार होते हैं, मनुष्य ठीक वैसा ही "आप से आप" बन जाता है, ऐसा महापुरुषों का स्वानुभवपूर्ण सिद्धान्त है; क्योंकि भोजन के रस द्वारा वे विचार मनुष्य के नस-नस में प्रवेश कर सम्पूर्ण शरीर में फैल जाते हैं। स्थूल भोजन से विचार का सूक्ष्म भोजन कई गुना श्रेष्ठ और प्रभावशाली होता है, यह आध्यात्मिक सिद्धान्त है। अतएव भोजन के समय पवित्र, उच्च, निर्भय, शान्त और ईश्वरीय भाव के विचार अवश्य रखने चाहिये। नीच विचार से नीच, और उच्च विचार से तुम अवश्य ही उच्च बन जाओगे, पापी विचार से पापी, व्यभिचारी विचार से व्यभिचारी और पुण्यमयी तथा ब्रह्मचारी विचार से तुम निस्सन्देह पुण्यवान और ब्रह्मचारी बन जाओगे। यदि तुम्हें काम को और भय को हटाना है तो हनुमानजी का ध्यान करो और उनके ही जैसे हमेशा—विशेषतः भोजन के समय खास तौर पर—"पर-स्त्री माता समान" ऐसे पवित्र विचार करो! आलस्य और मलीनता को हटाने के लिये स्वकर्त्तव्यपरायण श्रीलक्ष्मण जी जैसे पवित्र विचार करो, क्रोध को हटाना हो तो बुद्ध जी जैसे शान्त, प्रेमी, क्षमाशील व दयालु विचार करो। छोटे दिल को हटाने के लिये कर्ण और बलि की उदारता का चिन्तन करो। दरिद्रता को हटाने के लिये राजा के तुल्य श्रीमान् विचार करो और व्यग्रता छोड़ शान्त चित्त से उस सर्वव्यापी लक्ष्मीपति भगवान् का ध्यान करो, जिसकी लक्ष्मी पैर दबाती और सेवा करती हैं

लक्ष्मीपति का ध्यान करने से तुम भी लक्ष्मीपति अवश्य बन जाओगे अर्थात् धन आप से आप तुम्हारे चरणों की सेवा करेगा; क्योंकि "ध्याने ध्याने तद्रूपता" ऐसा ही प्रकृति का सिद्धान्त है। अतः जैसे जैसे तुम अपने को बनाना चाहते हो, वैसे ही अथवा जिस दुर्गुण को या आदत को आप हटाना चाहते हो, उससे ठीक ठीक विरुद्ध विचार श्रद्धा और शान्ति के साथ करो, निरसन्देह तुम वैस ही बन जाओगे। याद रक्खो, जैसे आपकी श्रद्धा और शान्ति होगी वैसे ही आपको कम ज्यादा और जल्दी देरी में फल मिलेगा क्योंकि श्रद्धा और शान्ति ही सम्पूर्ण सौभाग्य और ईश्वरत्व की कुञ्जी है और भगवान श्रीकृष्ण का भी यही सिद्धान्त* है।

मनुष्य के जैसे विचार होते हैं वैसे ही वातावरण (atmosphere) उसके बाहर-भीतर चहुँ ओर निर्माण होता है और फिर "योग्यं योग्येन युज्यते।" अथवा (Like attracts like) यानी समान समान की ओर खिचता है। इस न्याय से फिर वैसे ही विचार से पुरुष हमारे निकट खिच आते हैं, अथवा हम उनके निकट खिच जाते हैं, और हमारे विचारानुकूल ही अनेक शुभाशुभ घटनायें निर्माण होती हैं जिनसे कि हमारा अभीष्ट या अनिष्ट आप से आप सिद्ध होता है। आज जिस स्थिति में हम लोग हैं उस स्थिति के निर्माता खुद हम ही हैं और आहार विचार व आचार के प्रभाव से हम इस स्थिति के बाहर भी निकल सकते हैं और जैसी चाहें वैसी उन्नति कर सकते हैं। इसी स्थिति में पड़े रहने के लिये मनुष्य का जीवन नहीं है वस्तुतः परमपद प्राप्त करना ही जीवन मात्र का जीवनो-

*श्रद्धाऽमयो यं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः॥ गीता १७–३ ॥

देश्य है। उसी दिव्य स्थिति को हम लोगों को पहुँचना है और यह बात मनुष्य एक मात्र अपने शुद्ध, ऊँचे व सात्विक आहार, विचार और आचार द्वारा ही प्राप्त कर सकता है। महापुरुष अपने महान विचारों के द्वारा ही महान होते हैं और नीच पुरुष अपने नीच विचारों के कारण ही नीच होते हैं। अतएव सदैव पवित्र और ऊँचे विचार करना और श्रद्धा व शान्ति-पूर्वक अपने को उन्नति की ओर बढ़ाना प्राणिमात्र का प्रधान कर्तव्य है और यह काम नित्य भोजन के समय वैसे ही श्रेष्ठ व पवित्र विचार रखने से बड़ी आसानी से बहुत जल्द सिद्ध होता है।

भोजन के शास्त्रीय नियम

(१) केवल दो ही समय भोजन करना चाहिये; पहला भोजन १० से लेकर २ बजे के भीतर और दूसरा शाम को ८ बजे के भीतर, देर में करने से स्वप्नदोष होता है। (२) दिन भर में एक मरतबे भोजन करना सर्वोत्कृष्ट है -'एक भुक्त सदा रोग मुक्त'' (३) रात में ७ बजे के भीतर थोड़ा सा ताज़ा ठण्डा दूध बिल्कुल थोड़ी सी चीनी डालकर धीरे धीरे पी लेना चाहिये। रात में गरम दूध पीने से स्वप्नदोष होता है। (४) बहुत गरम गरम भोजन कदापि न करना चाहिये। उससे वीर्य पतला पड़ जाता है और कामोत्तेजना होती है। गरम भोजन से और चाय से दाँत जल्दी टूट जाते हैं, आँतें दुर्बल पड़ती हैं, कब्जियत बढ़ती है, और आँख की ज्योति मन्द पड़ जाती है। (५) भोजन हमेशा ताजा और सादा रहे। भोजन अनेक प्रकार का और बासी होने से अनेक विकार फौरन बढ़ जाते हैं। बासी भोजन से बुद्धि, आयु और तेज तत्काल नष्ट हो, आलस छाती

पर सवार होता है और मनुष्य को पाप कर्मों में प्रवृत्त करता है। (६) कभी हलक तक ठूंस ठूंस न खाओ; उससे बरबाद हो जाओगे। (७) थकने पर तत्काल भोजन न करना चाहिये। (८) भोजन के बाद शारीरिक व मानसिक परिश्रम एक घन्टा तक कदापि न करना चाहिये। एक घण्टा—कम से कम आध घण्टा तक आराम करो नहीं तो रोगग्रस्त बन जल्दी ही मरना पड़ेगा। भोजन के समय सदा शान्त, पवित्र व ऊँचे विचार रक्खो। चिड़चिड़ापन से अन्न हजम नहीं होता। क्रोध से अन्न जहर बन जाता है; अतः भोजन के समय हमेशा शान्त रहो, शान्ति के हेतु मौन धारण करो। (नमक, मिर्च, मसाला, पूड़ी, कचौड़ी मिठाई, खटाई, मद्य, मांस, चाय काफी वगैरह सर्वथा त्याग दो; क्योंकि इनसे मन व इन्द्रियाँ अत्यन्त चञ्चल बन जाती हैं। ऐसा पुरुष वीर्य को नहीं रोक सकता। (११) भोजन के समय पानी न पीना चाहिये; क्योंकि वैसा करना प्रकृति के खिलाफ है। भोजन के एक घण्टा बाद पानी पीना अच्छा है। (१२) भोजन के पहले हाथ, पैर और मुँह को पानी से पूरे तौर से स्वच्छ धो डालो और नाखून साफ रक्खो; क्योंकि उनमें जहर होता है। (१३) भोजन नियमित समय पर किया करो और फिर बीच में कुछ भी न खाओ (१४) राह चलते, खड़े रहते व लेटे हुए भोजन करना सर्वथा अनुचित है। (१५) प्रातःकाल जलपान अर्थात् कलेवा करना अच्छा नहीं है। (१६) भोजन की जगह पवित्र व प्रकाशमय होनी चाहिये। गन्दगी से जिन्दगी जल्दी बरबाद होती है, इस बात को सर्वदा ध्यान में रक्खो। (१७) भोजन के बाद "शतपद" अर्थात सौ कदम इधर-उधर टहलना चाहिये। भोजनोत्तर तुरन्त आराम-कुर्सी पर

पड़े, तो उससे बहुत हानि होती है; और दौड़ने से प्राण का नाश होता है।

जल सम्बन्धी शास्त्रीय नियम

(१) पानी स्वच्छ निर्गंध, जिस पर सूर्य्य का प्रकाश पड़ता हो ऐसा ताजा, ठण्डा बहता हुआ अथवा गांव के बाहर के कुएँ का होना चाहिये। क्योंकि ताजे जल में बहुत प्राणशक्ति भरी रहती है। जल को संस्कृत में 'जीवन' कहते हैं; सचमुच जल ही जीवन का मुख्य आधार है। भोजन से भी जल का महत्त्व अधिक है। (२) दिन भर में कम से कम तीन सेर पानी पीना चाहिये; क्योंकि उतना ही शरीर से पेशाब, पसीना और भाप के रूप में खर्च होता है। ऋतुकाल के अनुसार पानी की मात्रा कम ज्यादा भी करना उचित है। क़ब्ज़ की बीमारी अक्सर कम पानी पीने ही से हुआ करती है। यदि क़ब्ज़ वाले यथेष्ट पानी पीने लग जाँय तो उनकी यह बीमारी बहुत जल्द दूर हो सकती है। तथापि अति पानी पीना भी रोग-कर है—"अति सर्वत्र वर्जयेत्"। (३) पानी छानकर ही पीना चाहिये और छानने का कपड़ा हर वक्त साफ कर लेना चाहिये क्योंकि इसमें सूक्ष्म जल-जन्तु रहते हैं। विशेषतः हैजा वगैरह रोगों के दिनों में और दूषित स्थानों में, पानी हमेशा अच्छी तरह उबाल कर और छान कर ही पीना चाहिये, अन्यथा आलस्य के कारण मुफ्त में रोगी बन के अकाल में मरना पड़ेगा। रोगी होने का कारण विशेषतः दूषित जल ही होता है। अतएव सावधान! (४) जल थोड़ा थोड़ा दूध की तरह पीना

चाहिये। पीते वक्त नीचे ऊपर के दाँत संलग्न करने से पानी में भी प्राणशक्ति पूरी तरह से खींची जा सकती है; पानी भी थोड़ा थोड़ा पीने में आता है और दांत भी मजबूत हो जाते हैं; तथा पानी का कूड़ा करकट भी पेट में नहीं जाने पाता। एक मनुष्य के पेट में, दांत संलग्न न करने के कारण एक सांप का बच्चा तक चला गया था फिर भैंस के मट्ठा से उसमें मोहरी मिलाकर और पिला करके कै करायी गई तब वह निकला। अत: सावधान रहो। (५) प्यास को कभी न रोकना चाहिये; क्योंकि उससे जीवनशक्ति का भयंकर रूप से नाश होता है और मनुष्य अल्पायु बनता है। (६) प्यास की तृप्ति पानी ही से करो न कि सोडा-लेमन और बरफ शराब से। याद रक्खो, प्रकृति के विरुद्ध चलने से कोई सात जन्म में भी सुखी नहीं हो सकता। (७) भोजन के समय बिलकुल पानी न पीना चाहिये क्योंकि वैसा करना प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध है। कोई भी बुद्धिमान पुरुष हमें चींटी से लेकर हाथी तक ऐसा कोई भी प्राणी बतला दे, जो कि भोजन के समय पानी पीता हो। भोजन के साथ पानी न पीने से बहुत लाभ है हाजमा दुरुस्त होता है, शौच साफ होता है; बढ़ा हुआ पेट घटता है, गले की जलन नष्ट होती है और भोजन भी कम लगता है अर्थात् पेटूपन के छूटने से हम अनेक रोगों से भी अनायास छूट जाते हैं। (८) भोजन के आधा या पाव घंटा पहिले एक गिलास पानी पी लेने से भोजन के समय तुम्हें प्यास नहीं सतावेगी। उससे पेटूपन का भी नाश होता है और खोटी भूख नष्ट होकर सच्ची लगने लगती है। भोजन के साथ पानी न पीने का अभ्यास जाड़े के दिनों में सुखपूर्वक शुरू किया जा सकता है। (९) जिस भोजन में बिलकुल पानी नहीं होता ऐसा रूखा-

सूखा भोजन करने के बाद तुरन्त पानी पीना भी प्राकृतिक नियम के अनुकूल है। (१०) एक दम सेर डेढ़-सेर पानी पीना हानिकारक है; उससे 'बहु मूत्रता' का रोग होता है। प्यास मालूम हो तब २-३ गिलास पानी थोड़ा थोड़ा करके सावकाश पूर्वक पीना उचित है। (११) खड़े खड़े या लेटे हुए पानी कदापि न पीना चाहिये, यह कमज़ोर रोगियों का काम है। (१२) रात्रि में सोने के आधा घण्टे पहले ठण्डा जल पी लेना चाहिये, ढेर सा नहीं और पेशाब करके सोना चाहिये। इससे चित्त व चोला दोनों शान्त रहते हैं और स्वप्नदोष भी रुक जाता है; दूसरे मल त्यागने में भी सुभीता होता है (१३) प्रातःकाल उठते ही सूर्योदय से पहले स्वच्छ तांबे के लोटे में रात भर रक्खा हुआ जल पीने से रोगी भी निरोग और विष भी निर्विष हो जाता है मन प्रसन्न होता है। पेटूपन का नाश होता है और आयु बढ़ती है। पानी पीकर जरा पेट को लेकर नाभी के चारों ओर दबाने से (रगड़ने) पाखाना बहुत साफ होता है। प्रातःकाल का यह जल अमृत के तुल्य होता है। यदि नाक से पिया जाय तो नेत्र के समस्त विकार दूर हो जाते हैं: दृष्टि अत्यन्त तेजस्वी बनती है; बुद्धि तीव्र होती है; नासारोग दुरुस्त होते हैं, बुढ़ापा जल्दी नहीं आता, बाल बहुत उम्र तक काले बने रहते हैं, और सम्पूर्ण रोग दुरुस्त हो जाते हैं। क्योंकि तांबे में ऐसे ही कुछ चमत्कारिक गुण भरे हुए हैं। इसी कारण हमारे पूर्वजों ने देवपूजा में सर्वत्र तांबे के ही पात्रों का विशेषतः विधान लिखा है। धन्य है उनके उपकार! (१४) यदि किसी को कब्ज़ की शिकायत बहुत दिनों की हो तो सुबह एक दो गिलास मामूली गरम पानी में एक चम्मच भर खाने का नमक डाल कर उसे पी लो। फिर चित्त लेट जाओ और नाभी

के चारों तरफ से पेट को रगड़ो। देखो आठ दिन ही में पाखाना साफ होने लगेगा; ववासीर की बीमारी कम हो जायगी; जठर रोग, कर्ण रोग, सिर दर्द, गला और छाती के रोग, नेत्र रोग, कोढ़, कमर का दर्द, सूजन आदि असंख्य विकार शनैः शनैःनष्ट होजायँगे। अवश्य अनुभव कीजिये। परन्तु यह उपाय भी अप्राकृतिक है, फिर इसे छोड़ देना चाहिये। (१५) एनिमा का उपाय भी कब्जियत के लिये सर्वोत्कृष्ट होने पर भी अप्राकृतिक है। अत: एनिमा की आदत न लगाओ। एनिमा का उपयोग कभी कभी क्वचित् किया करो—एनिमा का रोज उपयोग करने से आतें सदा के लिये कमजोर वन जाती हैं। अतएव सावधान! (१६) जल पीते वक्त "इस जल से मुझ में सुख, शान्ति, आरोग्य ब्रह्मचर्य तेज इत्यादि प्रवेश कर रहे हैं और मैं पूर्ण आरोग्य हो रहा हूँ।" इस प्रकार के संकल्प व आत्म-कथन अवश्य किया करो। क्योंकि जैसे तुम जल पीते (अथवा सभी समय) संकल्प करोगे ठीक वैसे ही भाव तुम्हारे रोम रोम में घुस जाँयगे और तुम निःसंदेह वैसे ही वन जाओगे, ऐसा हम प्रतिज्ञा-पूर्वक कह सकते हैं।

"निर्व्यसनता"

नियम आठवां:—

वक्तव्य:—सम्पूर्ण दुर्व्यसनों की माता बीड़ी या सिगरेट है। इसी से गांजा से लेकर संखिया तक का शौक बढ़ जाता है। यह नितान्त सत्य है कि दुर्व्यसनी पुरुष कदापि ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। अमेरिकन डाक्टरों का कथन है कि तम्बाकू के सेवन से वीर्य फौरन उत्तेजित होकर पतला पड़ता है, पुरुषतत्व शक्ति क्षीण होती है; पित्त बिगड़ जाता है. नेत्र-ज्योति मन्द होती है। मस्तिष्क व छाती कमज़ोर होती है, खाँसी (जो कि सब रोगों का जड़ है), दमा और कफ बढ़ते हैं। आलस्य, कार्य में अनिच्छा, हृदय की धकधकाहट, व्यर्थ चिन्ता व अनिद्रा बढ़ती है, मुख से महान् दुर्गन्ध आती है, शारीरिक मानसिक, आर्थिक व सामाजिक भयंकर हानि होती है। शुद्ध हवा को जहरीली बनाकर अपने साथ ही साथ लोगों का भी स्वास्थ्य बिगाड़ना घोर पाप है। मेढ़क, पक्षी, बर्रें, मक्खियाँ और अन्य असंख्य कीड़े तम्बाकू की लपट मात्र ही से बेकाम होकर मर जाते हैं, तब फिर स्वयम् पीने वाला अकाल ही में क्यों नहीं मरेगा? तम्बाकू में "निकोटिन" नामक भयंकर विष होता है, जो कि शरीर के स्वास्थ्य और सद्भाव को मार डालता है। कई लोग इसे पाखाना साफ़ होने की दवा समझ बैठे हैं, परन्तु नतीजा उलटा ही होता है। आंतें और भी दुर्बल हो जाती हैं। फिर उन्हें बिना बीड़ी, चाय वगैरह पिये पाखाना होता ही नहीं। देखो, यह कैसी गुलामी है? शोक! यदि पीछे दिये हुए

अनुसार नमक पानी का उपयोग किया जाय तो बहुत जल्द नीरोग हो सकते हैं। परन्तु ऐसे लोग कैसे मानेंगे ? क्षयी बन कर उन्हें जल्दी मरना है न ?

जापान में यदि बीस बरस का बालक चुरुट, सिगरेट, बीड़ी या तम्बाकू पीते देखा जाय तो फौरन उसके माता-पिता पर जुर्माना होता है। हे प्रभो ! ऐसा सामाजिक प्रबन्ध भारत में कब होगा ? और हम भी अपने भाई जापानियों की तरह शूर, वीर, साहसी, उद्योगी और ब्रह्मचारी कब बनेंगे ?

हे प्रभो आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिये।
शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिये ॥
लीजिये हमको शरण में हम सदाचारी बनें।
ब्रह्मचारी, धर्मरक्षक वीर-व्रतधारी बनें ॥

"दो बार मल-मूत्र-त्याग"

नियम नवाँ:—

वक्तव्य:—शौच दो मरतबे जाने की आदत डालो। यदि दूसरी बार दिशा न मालूम हो तब भी जाओ। कुछ दिन के बाद आप से आप दिशा होने लगेगा। अनेक रोगों की जड़ मलबद्धता ही है; और मलबद्धता का एक मात्र असली कारण वीर्य का नाश ही है। "धातुक्षयात् श्रुतेरक्ते मन्दः संजायतेऽबलः।" वीर्यनाश से रक्त कमज़ोर, निकम्मा और नष्ट होकर अनल अर्थात् जठराग्नि मन्द पड़ जाती है। आँतों के दुर्बल होने पर फिर पाखाना भी साफ़ नहीं होता है।

चाय तम्बाकू पीने से और बार बार जुलाब, एनीमा वगैरह लेने से तो आँतें और भी दुर्बल बन जाती हैं। पाखाना हो चाहे न हो, परन्तु भोजन अवश्य करना होगा! चढ़ा देते हैं मात्रा पर मात्रा! नतीजा यह होता है कि अन्न भीतर ही भीतर सड़ कर अत्यन्त बदबूदार और ज़हरीला बन जाता है। बाहर निकलने पर जिस मैले से नाक फटी जाती है, ऐसा ज़हर पेट में रहने पर हम कैसे सुखी और दीर्घजीवी हो सकते हैं? दिशा को रोकने से तो और भी मूर्खता कर बैठते हैं: उससे भीतर का "अपानवायु" बिगड़ कर मैले को ऊपर की ओर चढ़ा देता है, जिससे कि वह ख़राब मैला फिर से पचने लगता है। भला बताइये अब स्वास्थ्य की आशा कहाँ है? अपान-वायु को रोकने से भी यही नतीजा होता है। हम कहते हैं, पहले ऐसा ठूँस ठूँस के खाना ही क्यों, जिससे कि दिन भर डकार और खराब वायु छोड़ना पड़े। अन्न को चबा चबा के न खाने से और भी मूर्खता कर बैठते हैं। पहले तो आँतें दुर्बल और उनमें श्वान की तरह झटपट भोजन! कैसे स्वास्थ्य रह सकता है? शरीर सुस्त पड़ जाता है, दिमाग़ में गर्मी छा जाती है, नेत्र बिगड़ जाते हैं, रुचि नष्ट हो जाती है; भूख नहीं लगती। बल, तेज उत्साह सभी घट जाते हैं। सदा रोनी सूरत बनी रहती और आयु बड़ी तेज़ी से घटती जाती है। इस बला से बचने का एक मात्र यही उपाय है कि हम फिर से प्रकृति के नियमानुसार चलें। रोगी पुरुष कदापि ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। श्वान की तरह उतावली से भोजन करना और मल-मूत्र को रोकना मानो प्रत्यक्ष काल के मुख में ही जाना है। मैले की गर्मी के

कारण भीतर की सब इन्द्रियाँ क्षुब्ध हो जाती हैं और इन्द्रियाँ क्षुब्ध होने पर फिर मनुष्य रोगी होने पर भी बड़ा कामी बन जाता है। मल-मूत्र को और वायु को किसी काम में फँस कर अथवा मोहवश व लज्जा के कारण, जाड़े के डर से व किसी कारण रोकना मानो अपने स्वास्थ्य पर कुल्हाड़ी मारना है। ऐसा करना ब्रह्मचर्य के लिये महान् हानिकारक है। अतः ब्रह्मचर्य और स्वास्थ्य-रक्षा के लिये सुबह-शाम दो मरतबे "नियमित समय पर मल-मूत्र का त्याग करना परम आवश्यक है। शाम को दिशा हो आने से सुबह का पाखाना बड़ा साफ़ होता है। मल के निकल जाने पर तन और मन दोनों निर्मल होते हैं।

दिशा के समय हरगिज़ काँखो मत; उससे वीर्य बाहर निकल पड़ने की विशेष संभावना है और बहुमूत्रता का रोग होता है। कब्ज़ की बीमारी अधिक हो तो पानी का यथेष्ट उपयोग करो। एक-दो आँवला खाकर पानी पी लो। पेट को रगड़ो और आँतों को "मल त्याग करने की" सोते वक्त आज्ञा दे रक्खो; सब काम दुरुस्त हो जायगा। इन सब का स्वयं अनुभव करके देखिये !

"इन्द्रिय-स्नान"

नियम दसवाँ:—

वक्तव्य:—जननेन्द्रिय को बिना कारण कदापि हाथ न लगाओ और न उसकी ओर देखो भी, क्योंकि अशुचि स्थान का स्पर्श और चिन्ता न करने से काम रिपु कभी जागृत नहीं हो सकता। भाव सदैव ऊँचे व पवित्र रक्खो। शौच के समय

इन्द्रिय को स्वच्छता से धो डालो। मणि पर ठण्डे जल की धार छोड़ो। देखो, इस बात को कभी न भूलो—जननेन्द्रिय में शरीर की तमाम नसें इकट्ठी हुई हैं। मानों सब शरीर का केन्द्र व मध्य है, और है भी वैसा ही। पेड़ की जड़ को पानी देने से जैसा सम्पूर्ण पेड़ हरा-भरा और चैतन्यमय बन जाता है, वैसे ही तमाम नसों की जड़ को-इन्द्रिय को-ठण्ढे पानी की धार से ठण्डा करने से सम्पूर्ण शरीर भी ठण्डा और शान्त हो जाता है। मन की चंचलता नष्ट होती है और स्वप्नदोष भी नहीं होने पाता। दिशा, पेशाब के समय में इस अत्यन्त उपकारी क्रिया को (इन्द्रिय-स्नान को) कभी न भूलो, क्योंकि यह ब्रह्मचर्य-रक्षा का परम गुप्त रहस्य है। हमारे शास्त्रों में ऋषि लोगों ने पेशाब के समय पानी साथ ले जाने की जो आज्ञा दी है, उसमें हमारे कल्याण के अति उच्च हेतु भरे हुए हैं। अहह धन्य है ! परन्तु आजकल के मुट्ठी भर ज्ञान के अधूरे लोग इस बात पर हँसते हैं; परन्तु वही क्रिया लुई कुहनी जैसे किसी पश्चिमीय विद्वान् ने यदि 'सिट्ज़-बाथ' के रूप में रख दी तो लोग झट क्रिया पर टूट पड़ते हैं और उसकी तारीफ़ करने लगते हैं।

प्रभू हम अपने देश का तथा देश के महापुरुषों का आदर करना कब सीखेंगे ? हमको विदेशियों की बात पर विश्वास है, किन्तु पूर्वजों की वैज्ञानिक बातों पर विश्वास नहीं। शोक !

जिसको न निज गौरव तथा,
निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं, नर पशु निरा है;
और मृतक समान है॥

अस्तु, पेशाब के समय गिलास या लोटा में पानी अश्वय ले जाया करो। बहुत ही उपकार होगा। शर्म से अपना सत्यानाश न कर लो! बाहर घूमते जाते समय हर वक्त एक रूमाल या अँगोछा साथ में रक्खो, ताकि उसे ही पानी में भिगो कर काम में ला सको। दिशा के समय पानी बड़े लोटे में ले जाओ। बहुत सज्जन तो बिना लोटे में पानी लिये ही दिशा मैदान जाते हैं! यह क्या सभ्यता, ज्ञान और सच्चरित्रता के लक्षण हैं? यह कैसा घोर पशुपन है? भाइयो, मनुष्य बनो! दिशा पेशाब के बाद सम्पूर्ण हाथ पैर (अधूरे नहीं) ठंडे जल से स्वच्छ धो डालने चाहिए, इससे और भी लाभ होता है।

——

"नियमित व्यायाम"

नियम ग्यारहवाँ:—

"प्रायेण श्रीमतां लोके भक्तं शक्तिर्न विद्यते।
काष्ठान्यपि हि जीर्यन्ते दरिद्राणां च सर्वशः॥

—महाभारत।

"धनी लोगों को सुपक्व अन्न भी पचाने की प्रायः शक्ति नहीं होती; परन्तु गरीब लोगों को काष्ठ तक पच जाते हैं।"

दो लड़के थे—एक ग़रीब का और दूसरा धनी का। धनी के लड़के ने ग़रीब से पूछा "भाई, तू ग़रीब होने पर भी इतना सशक्त, मज़बूत, तेजस्वी और निरोग किस प्रकार रहता है?"

उसने उत्तर दिया:—"भाई ! हमारे यहाँ दो हल हैं, एक को हम रोज़ खेत में ले जाते हैं और दिन भर काम में लाते हैं, इस कारण यह चाँदी की तरह चमकता है और जो घर पर है वह बेकार रहने के कारण मटमैला और मोरचा लगा पड़ा हुआ है। बस यही फरक मुझ में और तुझ में है। मैं रोज़ अपने चार मील दूरी पर के खेत तक पैदल जाता हूँ और दिन भर वहाँ परिश्रम करता हूँ और शाम को घर पैदल ही लौटता हूँ। दोनों वक्त मुझे खूब भूख लगती है और निद्रा भी बड़े मजे की आती है, पर मैं तुझे देखता हूँ, तू स्वयं कुछ भी काम नहीं करता, तेरे नौकर ही तेरा काम किया करते हैं। इस कारण तेरे नौकर भी तेरे से कई गुना बलवान, चपल और आरोग्य-संपन्न दिखाई देते हैं। बहुत हुआ तो गाड़ी-घोड़ा पर घूमने निकलता है; परिश्रम तेरे घोड़ों को होता है, न कि तुमको ! तो भी तू फ़ालतू ही हाँफने लगता है; परिश्रम के ही कारण तेरे घोड़े इतने तेज़ बलवान दिखाई देते हैं; परन्तु तू ज्यों का त्यों दुर्बल व रोगी बना है। शरीर को सुख-भोग में पालना ही सम्पूर्ण शारीरिक तथा मानसिक पतन का मुख्य कारण है। समझा ?"

तालाब का पानी स्थिर होने के कारण गन्दा बन जाता है परन्तु नदी व झरने का जल नित्य बहता रहने के कारण अत्यंत स्वच्छ और काँच की तरह चमकता है। फलतः उद्योग ही जीवन है और आलस्य ही मृत्यु है।

परिश्रम और कसरत में फरक है। परिश्रम से सम्पूर्ण शरीर को व्यायाम और आराम मिलता है और कसरत से व्यायाम और आराम के साथ ही साथ शरीर का अंग-प्रत्यंग सुडौल बनता है। बगीचे में, खेत में या घर ही पर परिश्रम

करने से या राजमंत्री मिस्टर ग्लैडस्टन की तरह कुल्हाड़ी लेकर स्वयं अपने हाथ से घर ही पर लकड़ी चीरने से मनुष्य बहुत-कुछ निरोग और सुखी बन सकता है; परन्तु प्रत्येक अवयव को गठीला और सुन्दर बनाने के लिये ख़ास प्रकार की कसरत ही करनी चाहिये। कसरत को ग़रीब, धनी सब कर सकते हैं। हमारी मर्ज़ी हो, चाहे न हो किन्तु व्यायाम हम को अवश्य ही करना होगा; न करेंगे तो हमें रोगी बनना होगा और अपनी जीवन-यात्रा अकाल ही में समाप्त करनी होगी। व्यायाम से मस्तिष्क के और सब प्रकार के काम करने की प्रचण्ड शक्ति प्राप्त होती है। अतः अस्थि-पंजर बने हुये पुस्तक-कीटों को इस व्यायामरूपी अमृत-संजीवनी का अवश्य सेवन करना चाहिये, परम उद्धार होगा। व्यायाम से मनुष्य को निस्सन्देह चिरन्तन आरोग्य प्राप्त होता है। व्यायाम से आयु की प्रचण्ड वृद्धि होती है। नागपुर में (सन् १९२१) लेखक ने स्वयं १५५ वर्ष का पहलवान देखा है। अभी (१९२७) में वह मौजूद है। उसका एक भी दाँत नहीं टूटा है, वह "गुजर" नामक एक रईस के यहाँ रहता है। स्वयं पहलवान बड़ा ही सदाचारी और ब्रह्मचारी है।

जिसे ब्रह्मचर्य पालन करना है उसे रोज़ नियम-पूर्वक व्यायाम करना अत्यन्त आवश्यक है। व्यायाम से मुँह मोड़ने वाला पुरुष कभी निर्विकारी और सच्चरित्र नहीं बन सकता। व्यायाम से मन और तन दोनों नीरोग, निर्विकार और पुष्ट बन जाते हैं। औषधियों से रोग और दुर्बलता को काटने की अपेक्षा कसरत द्वारा शरीर सुदृढ़ बनाकर उन्हें हटाना कहीं अधिक निर्दोष और बुद्धिमानी का काम है,

क्योंकि रोगों की उत्पत्ति अक्सर शारिरिक और मानसिक दुर्बलता से ही होती है और उनकी उत्कृष्ट, सुलभ और मुफ्त दवा व्यायाम ही है।

व्यायाम से सम्पूर्ण नीच इन्द्रियाँ फीकी पड़ जाती हैं और पापी वासनाएँ तत्काल दब जाती हैं। काम-विकारों का दमन करने के लिये और तन्दुरुस्ती के लिये व्यायाम एक अमृत-संजीवनी है। इसमें सम्पूर्ण रोगों को हटाने के गुण भरे हुए हैं। बड़े बड़े पहलवान जो पूर्ण शान्त, निर्विकारी, ब्रह्मचारी और दीर्घजीवी दिखायी देते हैं इसका असली रहस्य मात्र सुयोग्य व्यायाम ही है। प्रोफेसर माणिकराव केवल सदाचार और व्यायाम ही के बल पर ब्रह्मचर्य का पालन कर रहे हैं। व्यायाम से दुर्बल आदमी भी महान् बलवान बन जाता है। रोगी भी पूर्ण निरोगी बन जाता है और व्यभिचारी भी पुनः ब्रह्मचारी यानी वीर्यवान् बन जाता है। स्वामी रामतीर्थ पहले ही दुर्बल व रोगी थे, परन्तु व्यायाम ही के प्रताप से वे महान् बलशाली, आरोग्य-सम्पन्न और भाग्यशाली हुये थे। अतः ऐ मेरे दुर्बल रोगी व्यसनग्रस्त मित्रो! यदि व्यायाम को आज ही से तुम भी थोड़ा थोड़ा नियमित रूप से शुरू कर दोगे तो तुम भी बलवान् वीर्यवान और सच्चरित्रवान निसंशय बन जाओगे, ऐसा मुझे अत्यन्त दृढ़ विश्वास है। 'हाथ कंगन को आरसी क्या?' एक ही साल के भीतर आपको स्वयं इसका प्रत्यक्ष अनुभव हो सकता है, करके देख लीजिये। अतः ब्रह्मचर्य द्वारा आत्मोद्धार चाहने वालों को रोज प्रातःकाल, सायंकाल नित्य (२४। ३० दंड) और ५०। ६० बैठक) व्यायाम नियमपूर्वक दो मरतबे अवश्य ही करना होगा। क्या योरोप, क्या अमेरिका, सभी जगह "दौड़"

सब से श्रेष्ठ व्यायाम समझा जाता है, इसीलिये हरकारों की तरह कम से कम एक मील की दौड़ लगाना परम उपकारी होगा। एक समय कसरत और दूसरे समय दौड़, इस प्रकार व्यायाम करने से बड़ा ही अच्छा होगा। तन और मन सदा सर्वदा मस्त व शान्त बने रहेंगे। लेखक का ऐसा निजी अनुभव है।

स्वच्छ जल-वायु सेवनः—रोज़ बस्ती के बाहर शुद्ध हवा में टहलने के लिये जाना बहुत ही उत्तम है। जिससे कसरत न बन पड़ती हो ऐसे बहुत फूले हुए बहुत दुर्बल, बहुत रोगी क्षयी मनुष्य को टहलने से बढ़कर सुखकर तथा आरोग्यवर्धक दूसरा व्यायाम ही नहीं है। ऐसे मनुष्य को कम से कम एक मील और स्वस्थ मनुष्य को कम से कम ३ मील टहलना चाहिये। और जहाँ तक हो बाहरी कूप का जल दिन भर में एक मरतबे तो अवश्य ही पान करना चाहिये; क्योंकि शुद्ध वायु, शुद्ध जल-शुद्ध भूमि, विपुल प्रकाश, और विपुल आकाश ये ही प्रकृत की पांच दिव्य औषधियां हैं, यही प्रकृति के पंचामृत हैं। इसी पंचामृत का यथेष्ट सेवन करके ऋषि महात्मा इतने अजर, अमर और बलिष्ट हुये थे। बिना प्रकृति के इस अमूल्य पंचामृत का सेवन किये कोई भी पुरुष सहस्त्र युगपर्यन्त भी सुखी और उन्नत नहीं हो सकता।

व्यायाम के शास्त्रीय नियम (१) व्यायाम की जगह शुद्ध, हवादार व प्रकाशमय हो। संकुचित या गन्दी कोठरी न हो। संकुचित व रद्दी जगह में व्यायाम करने वाले पहलवान् जल्दी मरते हैं। परन्तु शुद्ध हवादार स्थान में कसरत करने वाले अत्यन्त

दीर्घायु होते हैं (२) दो मरतबे व्यायाम अवश्य ही करना चाहिये, शाम को व्यायाम करने से दुःस्वप्न नष्ट होकर नींद बड़ी सुखकर आती है। (३) पसीना तत्काल पोंछ डालना चाहिये, क्योंकि वह भीतर का ज़हर है। ज़हर का शरीर में या शरीर पर रहना अत्यन्त रोगकर और नाशकर है। (४) कसरत की शुद्ध प्रणाली सीखो। झुक कर नीचे सर लाने से तमाम खून मस्तिष्क में चला आता है जिससे कि मस्तिष्क बिगड़ जाता है और जिसका मस्तिष्क बिगड़ गया उसका सब मामला ही बिगड़ जाता है। नेत्र की ज्योति हीन हो जाती है और आयु घट जाती है। अतएव कसरत करते समय गरदन और सीना हमेशा ऊँचा रहे, इस बात को कभी न भूलो। (५) कसरत के समय, दौड़ते समय और सभी समय मुँह से श्वास कदापि न खींचो, उससे हृदय और फेफड़े कमज़ोर पड़ जाते हैं और असंख्य रोगों से पीड़ित होकर अकाल ही में काल का शिकार बनना पड़ता है। हाँ, ज्यादा थक गये हो तो मुँह से श्वास सिर्फ छोड़ सकते हो, परन्तु ले नहीं सकते। (६) श्वास हर वक्त नाक से ही लेना व छोड़ना चाहिये। श्वास जल्दी जल्दी न लो, न छोड़ो, धीरे २ लो। (७) कसरत या दौड़ने के बाद एकाएक बैठ न जाओ, नहीं तो रेल की तरह टूट फूट जाओगे। धीरे धीरे आराम करो। (८) कसरत के बाद पेशाब करना कभी न भूलो, क्योंकि उससे मूत्र द्वारा शरीर की फ़जूल गर्मी निकल पड़ती है और मन और तन दोनों शान्त बने रहते हैं। (९) शक्ति से अधिक व्यायाम या कोई काम कदापि न करो। इससे जीवन-शक्ति का भयंकर ह्रास होता है, "अति सर्वत्र वर्जयेत। (१०) सामान्यतः व्यायाम

और भोजन में २ घण्टे का अन्तर होना चाहिये । (११) भूख लगने पर व्यायाम न करना चाहिये और व्यायाम करने पर तत्काल न खाना-पीना चाहिए। नागपुर में एक बजाज का लड़का कसरत के बाद तुरन्त पानी पीने से मर गया; फिर कुछ खा लेना कितना भयानक है? व्यायाम से गले में कुछ खुश्की मालूम होती है इसलिये शीतल जल का कुल्ला कर लेना चाहिये या मुख में मिश्री की डली अथवा इलायची के २-४ दाने रख लेना चाहिये। कसरत के एक या आध घण्टा बाद दूध पीना अच्छा है। (१२) हर एक मौसम में स्नान के पहले ही कसरत करनी चाहिये। (१३) मालिश करना बहुत अच्छा है, उससे बहुत रोग नष्ट होते हैं। रोज़ करना ठीक नहीं। जाड़े में एक हफ्ते में २-३ बार और गर्मी में महीने में २-३ बार करना चाहिये, क्योंकि मालिस भी अप्राकृतिक ही है। अपने हाथ मालिश करने से स्वास्थ्य और भी दुरुस्त होता है। पीठ की मालिश चाहे तो दूसरे के द्वारा की जाय। (१४) व्यायाम को खेल समझ कर करो, न कि बोझ। इससे बहुत जल्द तुम पहलवान बन जाओगे। (१५) व्यायाम करने का ढङ्ग भी अच्छा होना चाहिये। उस समय टेढ़ा बाँका मुँह बनाने से व्यायाम के बाद भी चेहरा वैसा ही बना रहेगा और प्रसन्न-वदन रहने से तुम भी प्रसन्न बना जाओगे। इसके लिये सामने शीशा रखने से निस्सीम लाभ होगा। (१६) व्यायाम के समय सामने शीशा रखने पर मनुष्य की भावना बड़ी बलवती बनती है और अङ्ग प्रत्यंग भी प्रबल भावना के कारण बड़ी शीघ्रता से पुष्ट व गठीले बनते हैं। अतः व्यायामों के समय चित्त एकाग्र रख कर दृढ़ भावना करो कि "मेरी नस नस में

बल, तेज, सामर्थ्य, निर्भयता, वीरता, क्षमा, शान्ति आरोग्य, ब्रह्मचर्य प्रवेश कर रहे हैं, मैं उन्नति कर रहा हूं"—ऐसा ख्याल करने से सचमुच आप ऐसे ही बन जायँगे।

"जल्दी सोना और जल्दी जागना"

नियम बारहवाँ:—

वक्तव्य:—जिन्हें वीर्य रक्षा करनी है और आरोग्य-सम्पन्न तथा भाग्यवान बनना है, उन्हें जल्दी सोने और जल्दी जागने का अभ्यास अवश्य ही डालना चाहिये। १० बजे के भीतर ही सोना चाहिये और ४ बजे के भीतर ही उठना चाहिये। क्योंकि स्वप्नदोष प्रायः रात्रि के अन्तिम प्रहर में ही हुआ करता है। बाल्यकाल नष्ट कर डालने से जैसे सम्पूर्ण जीवन दुःखमय हो जाता है, वैसे ही प्रातःकाल (दिन का बाल्यकाल) नष्ट कर डालने से भी सम्पूर्ण दिन दुखमय बन जाता है। प्रातःकाल हो जाने पर जो पुरुष कुम्भकर्ण के समान खटिया पर पड़ा ही रहता है उसको अभागा पुरुष समझना चाहिये। इतिहास और अनुभव हमें स्पष्ट बतलता है कि प्रातःकाल उठने वाला पुरुष ही चंगा और भाग्यावान हो सकता है। आज तक हमने प्रात.काल में न उठने वाले किसी भी व्यक्ति को महापुरुष होते हुए न देखा है और न सुना है। प्रकृति की ओर ध्यान देने से यही मालूम होता है कि प्रात.काल ही में

सम्पूर्ण रस भरा है। प्रातःकाल को 'अमृतवेला' कहते हैं। सचमुच सृष्टि के इस प्रातःकालीन दिव्य अमृत को त्यागने वाला पुरुष जल्दी बूढ़ा व मृतक तुल्य हो जाता है। हमारे ऋषि मुनि इसी अमृत का नित्यशः ब्रह्ममुहूर्त में यथेष्ट सेवन कर इतने चङ्गे और चैतन्यमय बने हुए थे। रात भर के आराम के कारण प्रातःकाल में सम्पूर्ण शक्तियाँ अत्यन्त सतेज और बलिष्ट रहती हैं। कठिन से कठिन काम भी उस समय सुगमतापूर्वक हो जाते हैं। ऋषि लोग ब्रह्ममुहूर्त में उठ कर प्रथम सर्वशक्तिशाली परमात्मा का ध्यान करते थे, जिससे कि परमात्मा की शक्ति उनमें प्रवेश करती थी और बड़े बड़े राजा भी उनके सामने सिर झुकाते थे। यदि हम भी चाहते हैं कि हमारे सम्पूर्ण काम, क्रोधादि अन्तर्बाह्य शत्रु हमारे सामने सिर झुकावें और संसार में हमारी कीर्ति हो तो हमें प्रातःकाल उठने का अभ्यास डालना ही चाहिये। एक जगह कहा है--"Early to bed and early to rise, makes a man heatlhy, wealthy and wise" यानी प्रातःकाल में उठने वाला मनुष्य आरोग्यवान्, भाग्यवान और ज्ञानवान होता है—यह कथन अक्षर अक्षर सत्य है। देर में सोने वाला और देर में उठने वाला पुरुष कभी भी ब्रह्मचारी विवेकी व भाग्यवान नहीं हो सकता। अतः जिन्हें पूर्वजों की तरह वीर्यवान ज्ञानवान, सामर्थ्य-सम्पन्न बनना हो, उन्हें रोज ब्रह्ममुहूर्त में ही उठना चाहिए और सब से पहिले ईश्वर-चिन्तन करना चाहिए। क्योंकि प्रातःकाल में जो कुछ चिन्तन किया जाता है मनुष्य वैसा ही दिन भर बना रहता है। यदि आप प्रातःकाल क्रोध करके उठेंगे, तो दिन भर क्रोधी ही बने रहेंगे

और यदि आप प्रसन्नता पूर्वक उठेंगे और 'पर स्त्री मात समान' ऐसा शुभ चिन्तन करेंगे तो सब दिन प्रसन्नता पूर्वक बीतेगा, मन अत्यन्त पवित्र हो रहेगा और कोई हानि होने पर भी आप प्रसन्न ही रहेंगे। यदि रोज़ ही आप ईश्वर-चिन्तन करके व प्रसन्नता-पूर्वक उठेंगे तो दो ही साल में आपके जीवन-चरित्र में जमीन आसमान का फरक दिखाई देगा। प्रत्यक्ष का प्रमाण क्या ? करके देख लीजिये।

"निद्रा के शास्त्रीय नियम"

(१) जहाँ तक हो, खुली हवा में, प्रकाशमय जगह में, या खुले कमरे में सोना चाहिये; क्योंकि शुद्ध जल, हवा, स्थल, आकाश, प्रकाश ही प्राणिमात्र का जीवन है। जहाँ प्रकाश नहीं होता वहाँ रोग और दरिद्रता अवश्य होते हैं 'Where there is no sun there is no health and wealth' (२) हर वक्त अकेले सोना चाहिये, इसी में ब्रह्मचर्य है। (३) ओढ़ने के कपड़े स्वच्छ, हलके और सादे होने चाहिए। नरम-नरम बिछौने से इन्द्रियाँ क्षुब्ध हो जाती हैं जिससे वे मन तन को बिगाड़ डालती हैं। फिर अक्सर स्वप्नदोष होता है। (४) दुलाई, रजाई आदि 'महावस्त्र' फट जाने तक पानी का दर्शन नहीं कर पाते। धूल और गन्दगी से भरे हुये कपड़ों में हजारों रोग जन्तु होते हैं, जो कि स्वास्थ्य को खा डालते हैं। अतः ओढ़ने के, पहनने के, बिछाने के सभी कपड़े सदा निर्मल रखने चाहिये। यदि कपड़े धोने लायक न हों तो धूप में डालना चाहिये। क्योंकि सूर्य के प्रकाश से रोग के सब जन्तु मर जाते हैं। ओढ़ने से मुँह ढाँक के कभी मत सोओ क्योंकि नाक, मुँह और अपान से हरदम जहर कार्बन निकला करता है ज़िससे कि मनुष्य निश्चय ही रोगी

और अल्पायु बन जाता है। गन्दगी से गन्दगी बरबाद होती है, यह सिद्धान्ततत्व सदा ध्यान में रक्खो। (६) आत्मोद्धार की इच्छा रखने वालों को जल्दी सोना और जल्दी उठना चाहिये। बारह बजे के पहले का एक घण्टा बारह बजे के बाद के तीन घंटे के बराबर होता है। साढ़े छः घंटे से ज्यादा हरगिज़ न सोना चाहिये। अधिक सोने वाला कदापि स्वस्थ व महापुरुष नहीं हो सकता। महापुरुष कम सोने वाले और अधिक काम करने वाले ही हुआ करते हैं। रात्रि को खास कर विद्यार्थियों को ९ बजे ही सोना चाहिये और प्रातःकाल चार बजे भगवन्नाम स्मरण करते हुये उठना चाहिये। और बिछौने को एक दम त्याग देना चाहिये, और शुद्ध जगह पर बैठ कर सब से पहले भगवन्नाम, चिन्तन स्तुति व पवित्र संकल्प करने चाहिये। निस्सन्देह आप वैसे ही बन जावेंगे।

(७) सोते वक्त दीपक बुझा देना चाहिये। क्योंकि वह स्वयं 'कार्बन' फैला हवा के प्राण को और हमारे जान को खा डालता है तथा नाक मुँह और पेट को काजर की कोठरी बना देता है। (८) सोने के पहले और अन्त में जल पीना चाहिये और परमात्मा का ध्यान करते हुये सोना और उठना चाहिये। (९) निद्रा के पहले पेशाब अवश्य कर लेना चाहिये। जाड़ा या किसी कारण दिशा, पेशाब को रोकना बड़ा भयानक है। इससे स्वप्नदोष होता है। (१०) जब तक खूब नींद न आवे तब तक बिछौने पर न लेटना चाहिये। बिछौने पर फजूल पड़े पड़े जागते रहने की हालत में चित्त दुर्वासनाओं की तरफ दौड़ता है (११) निद्रा के समय मन को संसारी

झंझटों से अलग रक्खो। उच्च, शान्त और गम्भीर विचार जारी रक्खो। हृदय में ईश्वर का ध्यान व चिन्तन करो, तत्काल निद्रा आवेगी। निद्रा की चिन्ता करने से निद्रा नहीं आ सकती। (१२) थोड़ी सी दौड़ लगाने से तत्काल निद्रा आ जायगी। (१३) निद्रा के समय शरीर पर कुछ भी कपड़े न रखने चाहिये। वहुत हुआ तो एक पतला कुर्त्ता काफी है। (१४) निद्रा के पहले खुले शरीर को खुली ठंडी हवा से ठंडा करने से निद्रा जल्दी आती है। बिछौना को भी फटकारने से उसमें की गर्मी निकल जायगी और नींद वहुत जल्दी लग जायगी। (१५) घुटने तक पैर, कमर का सब भाग और शिर ठंडे जल से धोने और पोछने से निद्रा बड़े मजे में आती और स्वप्नदोष भी नहीं होने पाता है। (१६) उठते समय नेत्र पर एकाएक प्रकाश न पड़े ऐसा करो। उठने के वाद हाथ धोकर ताम्र के पात्र का जल नेत्रों को लगाने से नेत्र-विकार सब दूर होते हैं और दृष्टि तेजस्वी होती है। (१७) निद्रा के कम से कम एक घंटा पहले भोजन अवश्य कर लेना चाहिये। खाया और तुरन्त सोया, इसमें बुराई है। ऐसा करने से स्वप्नदोष के होने की अधिक सम्भावना रहती है। (१८) रात में वहुत हल्का भोजन करना चाहिये और नीबू, संतरा, दही, मूली, ककड़ी आदि तथा तेल के पदार्थ न खाने चाहिये। (१९) वहुत लोगों का ख्याल है कि "कपड़े वार वार धोने से जल्दी फटते हैं" परन्तु यह बात नहीं है। मैले होने ही से कपड़े, हाथ-पैर के मुआफिक, जल्दी फटते हैं। सारांश—कायिक, वाचिक और मानसिक स्वच्छता ही ब्रह्मचर्य व दीर्घायु का रहस्य है।

योगासनाभ्यास *

नियम तेरहवाँ—

हमारे प्राचीन सद्ग्रन्थों में योगाभ्यास की बड़ी महिमा वर्णित है। योगाभ्यास से शरीर के समस्त दोष दूर हो जाते हैं। यही नहीं, हमारे प्राचीन साहित्य में तो इस बात तक के प्रमाण मिलते हैं कि हमारे पूर्वज ऋषियों ने मृत्यु तकको इसी योगाभ्यास द्वारा जीत लिया था। हमारा अतीत इतिहास यह प्रमाणित करता है कि हमारे पूर्वज इच्छानुसार दीर्घायु लाभ करते रहे हैं। आज कल जब कभी हम सुनते हैं कि अमुक पुरुष की आयु सौ वर्ष से अधिक की है तो हमको आश्चर्य सा होता है। पर हम इस बात का विचार नहीं करते कि हमारे पूर्वजों की आयु तो प्रायः सौ वर्ष से ऊपर हुआ करती थी। बात यह है कि हमारे पूर्वज योगाभ्यास करते हुये इच्छानुसार स्वास्थ्य लाभ करते थे। ऐसी दशा में दीर्घायु प्राप्त होना कठिन था?

पातञ्जल योग सूत्र में योग के आठ अङ्ग बतलाये हैं। यथा—
"यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणाध्यान
समाधियोऽष्टावङ्गानि"

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि। इनमें भी आसन, प्राणायाम धारणा, ध्यान और समाधि ये पाँच अङ्ग ही मुख्य माने गये हैं। प्राचीन काल में हमारे देश में थोड़ा बहुत योग का अभ्यास रखने का प्रचलन

---

*जो इस संबंध में विशेष जानना चाहें, वह हमारे यहां से 'स्वास्थ्य और योगासन' नामक पुस्तक मँगाकर देखें।

था इसी कारण उस काल में हमारे पूर्वज मानसिक और शारीरिक बल प्राप्त करके पूर्ण स्वस्थ रहते और पूर्णायु को प्राप्त होते थे। जिन रोगों पर औषधियाँ काम न देती थीं, योग-साधन से वे उन रोगों से भी मुक्त हो जाते थे। अविद्या से ज्यों ज्यों शनैः शनैः योग-विद्या का लोप होता गया, देशवासियोंने स्वास्थ्य और फलतः दीर्घायु का दिवाला निकाल दिया। आसन और प्राणायाम योग के सब से मुख्य अङ्ग माने गये हैं। कितने खेद की बात है कि इन दोनों के दोनों योग-साधनों का लोप सा होगया है। अनेक धार्मिक सज्जन महानुभाव प्राणायाम तो येन केन प्रकारेण कर भी लेते हैं, पर योगासनों का सर्वथा लोप होगया है। पर प्राणायाम आत्म-शुद्धि के लिए जितना आवश्यक है, योगासन शारीरिक विकास के लिए उससे भी अधिक उपयोगी है। कहा भी है—

"आसनानि समस्तानि, मावन्तो जीवजन्तवः
चतुरशीति लक्षाणि, शिवेन कथितं पुरा॥

योगासनों का अभ्यास शौच स्नान,व्यायाम आदि से निपट कर बिना कुछ खाये पीये, प्रातः सायं ऐसे स्थान पर करना चाहिये जहाँ शुद्ध वायु विपुलता से आती हो और प्रकाश भी पर्य्याप्त हो। यों तो योगासन अगणित हैं। योनियों की संख्या चौरासी लाख है। योनियों की संख्या के अनुसार ही चौरासी लाख योगासन योगिराज भगवान् शङ्कर ने बतलाये हैं। पर उनमें चौरासी मुख्य हैं। योगी और महात्मा लोग इन चौरासी आसनों का अभ्यास करते हैं। पर साधारण जीवन में ब्रह्मचर्य-व्रत पालन के लिये इन सभी आसनों का प्रयोग आवश्यक नहीं है। इसलिये हम यहाँ पर उन्हीं मुख्य आसनों का वर्णन करेंगे, जिनसे ब्रह्मचर्य-रक्षा में अपेक्षित सहायता मिल जाती है।

[१] सिद्धासन

पहिले पल्थी मारकर बैठ जाइये। फिर बांये पैर की एड़ी को गुदा और अण्डकोषों के मध्य में, मज़बूती के साथ जमा दीजिये इसके वाद दाहिने पैर की एड़ी को लिंग के ऊपर, मूल में, जमा दीजिये। ठोढ़ी को हृदय में, अर्थात् कंठमूल से थोड़ी दूर लगाइये और स्थिर होकर शरीर को सीधा कीजिये, फिर भौंहों के मध्य में दृष्टि को ऐसा स्थिर कीजिये कि पलक और नेत्र विलकुल हिलडोल न सकें। हाथों को घुटनों पर रख लीजिये। दोनों पैर एक दूसरे पर इस तरह आ जाने चाहिये कि दोनों की संधि-स्थान की हड्डियाँ एक दूसरे पर आ जायें! इस समय श्वास-ग्रहण और श्वास-त्याग की क्रियायें वहुत धीरे धीरे शान्ति के साथ होनी चाहिये। इस आसन का अभ्यास करते समय इस वात का ध्यान रखना आवश्यक है कि पीठ की रीढ़ सीधी रहे। पीठ की रीढ़ से शरीर में सारी नसें फैली हुई हैं। इसी को मेरुदण्ड कहते हैं। शरीर का यही मूलाधार है। साधारण रूप से चलते फिरते समय भी इसको सीधा रखना चाहिये।

यह आसन एक मास के निरन्तर अभ्यास से लाभप्रद सिद्ध होता है। पर इस आसन का अतिशय अभ्यास हानिकारक भी होता है क्योंकि यह आसन कामोत्तेजना का नाशक है। अतिशय अभ्यास से इसका प्रभाव सन्तानोत्पादक शक्ति को इतना क्षीण वना देता है कि काम विलकुल शान्त पड़ जाता है। और पुरुष स्त्री के काम का नहीं रह जाता। पर इस भय से इस आसन का करना ही स्थगित कर देना ठीक नहीं है। ब्रह्मचर्य के लिये यह

आसन अतीव लाभकर है। अति तो सर्वत्र और सर्वदा वर्जित है। इसलिये इसका थोड़ा अभ्यास रखना चाहिये।

[२] पद्मासन

इस आसन में भी पहले पल्थी मार कर बैठ जाइये, फिर दाहिने पैर को बाईं जाँघ पर और बायें पैर को दाहिने जाँघ पर जमा दीजिये। फिर बाँया हाथ बाँयें घुटने पर और दाहिना हाथ दायें घुटने पर रखिये। इस आसन में पीठ, गला, सिर, रीढ़ बिलकुल सीध में होनी चाहिये। अपनी दृष्टि को भौंहों के बीच या नासिका पर लगा देना चाहिये।

[३] जानुशिरासन

इस समय आसन में पहले दोनों पांवों को ज़मीन पर समान रेखा में फैला दीजिये। पांव ज़मीन से इस तरह चिपके रहने चाहिये कि बिलकुल उठ न सकें। इसके बाद किसी एक पैर को गुदा और अण्डकोष के बीच में लाकर उसकी एड़ी को वहाँ इस तरह जमा दीजिये कि उस पैर का पंजा और तलुवा दूसरे पैर के जंघा से बिलकुल चिपक जाय। और उसका दवाव भी बराबर पड़ता जाय। इसके बाद दोनों की कैंची बनाकर उन्हें फैले हुये पैर के तलवे के यहाँ ले जाइये। और उस पैर को इस तरह पकड़ लीजिए कि आपकी नाक ठीक उसी पैर के घुटने के ऊपर आ जाय। यह आसन पाँच मिनट से लगाकर आध घण्टे तक, या जैसी सामर्थ्य हो, उसके अनुसार करना चाहिये।

यह आसन यदि पहले दाहिने पैर से कीजिये, तो फिर बायें पैर से। इसी तरह बदलते रहिये। इसमें भूल नहीं होनी चाहिये।

भूल होने से हानि होगी। बात यह है कि दोनों पैरों का अभ्यास बराबर होना चाहिये। इसमें प्रत्येक बार समय भी समान लगना चाहिये।

यह आसन स्त्रियों के लिये नहीं है।

[४] पादांगुष्ठासन

इस आसन में किसी एक पैर की एँड़ी को गुदा और अंड-कोष के मध्यभाग में लगा कर शरीर के समस्त भार को उसी पर छोड़ दीजिये। दूसरे पैर को घुटने के ऊपर रखिये। अगर सहारे की आवश्यकता हो तो या तो एक हाथ का सहारा लीजिये, या दीवार का।

इस आसन का प्रभाव बहुत शीघ्र होता है। इसके अभ्यास से कैसा ही स्वप्नदोष हो दूर हो जाता है पर इस आसन को ब्रह्मचारी ही को करना चाहिये। गृहस्थों के लिये इसका निरन्तर अभ्यास करना विशेष हितकर न होगा। स्त्रियों के लिए यह आसन वर्जित है।

[५] शीर्षासन

इस आसन में सिर के बल खड़ा होना होता है। इसलिये या तो एक गदेला रख लेना चाहिये, या किसी वस्त्र की ऐसी गिंडुई बना लेना चाहिये जो सिर के बल खड़े होने में सहायक हो। मतलब यह है कि इस आसन के समय सिर के नीचे सख्त ज़मीन नहीं होनी चाहिये। सख्त ज़मीन होने से मस्तिष्क पर दुष्प्रभाव पड़ने का भय रहता है। इसलिये यही अच्छा है कि इसका आसन बहुत मुलायम और गुदगुदे धरातल में करें।

विशेष सूचनाएँ

१—इन योगासनों का अभ्यास करते समय लघुपाक आहार अत्यन्त आश्वयक है। कंद, मूल तथा फलों का ही आहार किया जाय तब तो बहुत ही अच्छा हो पर साधारण रूप से गौ का दूध, चावल, खिचड़ी, दलिया, गेहूँ के मोटे आटे की रोटी, मूँग की दाल, देशी शक्कर, साबूदाने की खीर, सूखे मेवे तथा हरे फल खाने चाहिये।

२—इन आसनों की जो विधियाँ ऊपर बतलायी गई हैं वे यद्यपि कुछ बहुत कठिन नहीं है, तथापि बिना किसी अभ्यासी शिक्षक के इनका अभ्यास करने से लाभ के बदले प्रायः हानि भी हो जाती है। इसलिये इन्हें शिक्षक या योगी से ही सीखना चाहिये।

३—इन आसनों का अभ्यास करते समय श्वास का निकलना और ग्रहण करना—ये दोनों क्रियायें बहुत धीरे धीरे होनी चाहिये।

४—यदि शरीर में वीर्य-सम्बन्धी कोई विकार हो तो इन आसनों का अभ्यास करते समय गुदा-संकोचन पर विशेष ध्यान रखना चाहिये। वीर्य रक्षा का यह एकमात्र अव्यर्थ महौषधि है।

५—जो लोग विधिवत ब्रह्मचारी नहीं हैं अर्थात् जिनका विवाह हो गया है, वे भी इनका अभ्यास करके अपने शरीर को नीरोग बना सकते हैं। पर इन आसनों का अभ्यास करते समय दृढ़ संयम के साथ वीर्य-रक्षा करना अनिवार्य रूप से आवश्यक है।

"प्राणायाम"

नियम चौदहवाँ—

'प्राणो विलीयते यत्र मनस्तत्र विलीयते।
मनोविलीयते यत्र प्राणस्तत्र विलीयते॥'

—हठयोग

"प्राणों का लय (या कुम्भक) होने से मन का भी लय होता है अर्थात् मन भी स्थिर होता है और मन के लय होने से पंच प्राण भी स्थिर होते हैं, उनका लय होता है" श्रीमनु महाराज कहते हैं "जैसे अग्नि से धातुओं का मल नष्ट होता है वैसे ही प्राणायाम से मन और इन्द्रियाँ पवित्र व स्थिर होती हैं।"

वक्तव्य—प्राणायाम में इतनी प्रचण्ड शक्ति है कि उससे रोगी भी नीरोगी और व्यभिचारी भी ब्रह्मचारी हो सकते हैं। उसी कारण भगवान ने गीता के छठें अध्याय में इसका सुन्दर वर्णन किया है। प्राणायाम से ब्रह्मचर्य की उत्कृष्ट रक्षा होती है। प्राणायाम से आयु वृद्धि असीम होती है। अल्पायु भी दीर्घायु हो जाते हैं। प्राणायाम के तीन अङ्ग हैं (१) पूरक (२) रेचक और (३) कुम्भक।

(१) पूरक—दहिनी नासिका अंगूठे से दबा कर बाँयी से वायु भीतर खींचना और दोनों नासिकायें फिर बन्द किये रहना।

(२) कुम्भक—भीतर की वायु जहाँ तक हो सके रोकना।

(३) रेचक—भीतर रोका हुआ वायु, दाहिना नासिका खोल करके और बाँयी नासिका को हाथ की अखिरी दो उँगलियों से दबा कर धीरे धीरे बाहर छोड़ना।

जिससे वायु छोड़ा है उसी दाहिने नासा-छिद्र से फिर से वायु भीतर खींचना, पुनः पहिले की तरह नाक बन्द करके कुम्भक, करना और अन्त में वाम नासा से रेचक करना। जिससे वायु बाहर छोड़ा जाता है उसी से वायु भीतर खींच कर प्राणायाम शुरू करना चाहिये। यह प्राणायाम का तत्व पूरा ध्यान में रक्खो।

सिद्धासन—नीचे बैठ कर बाँयें पैर की एड़ी गुदा और इन्द्री के बीच में रक्खो और दाहिने पैर की एड़ी इन्द्री पर स्थापना करो और कमर बिना झुकाये सीधे बैठ जाओ। यह सिद्धासन सम्पूर्ण चौरासी आसनों में सब से श्रेष्ठ आसन है। इससे मन व इन्द्रियाँ तत्काल शान्त हो जाती हैं।

जब कभी चित्त में काम विकार उत्पन्न हो तो तत्काल सिद्धासन लगा कर सीधे बैठ जाओ और फौरन प्राणायाम शुरू कर दो। मन में "भगवन्नामस्मरण" वा "माँ माँ" इस पवित्र महामंत्र का जप अथवा अन्य शुद्ध संकल्प करो। देखो, एक दो ही कुम्भक में तुम्हारी सम्पूर्ण नीच इन्द्रियाँ और पाप-वासनायें तत्काल दब जायँगी और तुम बच जाओगे। यदि रास्ते में चलते समय कदाचित मन में कुकल्पनायें उठें तो तत्काल दोनों नासिकाओं से वायु खींच कर दम को रोको और खूब तेज़ी के साथ फौज़ी ढङ्ग से चलो। रोका हुआ श्वास छोड़ते वक्त मुँह खोलकर छोड़ दो। ३-४ मरतबे करने से तुम बेदाग़ बने रहोगे। परन्तु हाँ, दृष्टि को हर वक्त नीची ही अर्थात नम्र ही रखना होगा व मन में ईश्वर व मातृ-नाम का पवित्र जप अवश्य करना होगा। निस्सन्देह तुम्हारा इसी जीवन में उद्धार होगा।

मामूली रवर की साइकिल जो सैकड़ों मील मनुष्य को बिठला कर ले जाती है सो किसके वल पर ? कुम्भक ही के बल पर। इतनी बड़ी प्रचण्ड रेल भी कुम्भक ही के वल पर लाखों मन का लदा हुआ बोझा लिये हुये विना दिक्कत के चलाई जा रही है। कुम्भक ही के वल पर मनुष्य अथाह पानी में तैर कर पार चला जाता है। संक्षेप में कहा जाय तो यह सम्पूर्ण जगत कुम्भक ही के बल पर कर्त्तव्य-तत्पर दिखाई दे रहा है। कुम्भक में सम्पूर्ण जगत को हिलाने की शक्ति है। योगी लोग इस ईश्वरीय शक्ति को प्रणायाम के द्वारा अपने में अमर्यादितरूप से बढ़ा कर अजर अमर यानी अकाल मृत्यु न पानेवाले दीर्घजीवी हो जाते हैं, और भोगी लोग अपनी उस दैवी शक्ति को, काम के गुलाम बन नष्ट कर के स्वयं जर्जर और जीते जी मुर्दे बन जाते हैं। अतः जिन्हें दीर्घायु, निरोग, ब्रह्मचारी और सामर्थ्य-संपन्न बनना हो उन्हें चाहिये कि "प्राणायाम की विधि" किसी योग्य पुरुष-द्वारा जल्दी से सीख लें। हमारे नित्यकर्म में जो "सन्ध्योपासन" रक्खा है उसमें ऋषि लोगों के कितने भारी उपकार हैं। परन्तु आज-कल अंगरेजी पढ़े हुये कई अभागे लोग इस प्रचण्ड दैवीशक्ति के रहस्य-पूर्ण सन्ध्या को नहीं करते। वे सन्ध्या की कुछ भी कीमत नहीं समझते। यह देश का महा दुर्भाग्य है। इसी कारण आज हमारी भी कुछ कीमत नहीं हो रही है ! प्रभो ! हमारे समस्त भाइयों की आँखें खोल दो और इस दैवी शक्ति का खजाना—संध्या युक्त प्राणायाम—उनके सुपुर्द कर दो। क्योंकि इसमें स्वार्थ और परमार्थ दोनों कूट कूट कर भरे हुए हैं।

"उपवास"

नियम पन्द्रहवां:—

आहारं पचति शिखी दोषान् आहारवर्जितः ॥

—आयुर्वेद ।

'अग्नि आहार को पचाती है और उपवास दोषों को पचाता है अर्थात् नष्ट करता है ।"

जहां तक हो सकता है वहां तक हमारा शरीर बाहरी और भीतरी उपद्रवों से अपनी रक्षा आप ही कर लेता है। परन्तु मनुष्य जब शक्ति के बाहर खा लेता है अथवा कोई कार्य कर बैठता है, तब शरीर अंतर्बाह्य रोगी व दुर्बल बन जाता है। फिर वह अपनी रक्षा करने में असमर्थ हो जाता है। यदि उसे विश्रान्ति न दी जाय तो अन्त में वह जवाब दे देता है। "रोगी शरीर में रोगी मन" यह प्रकृति का सामान्य सिद्धान्त है, पापी वासनायें रोगी शरीर की सूचक हैं। स्वास्थ्य-पूर्ण शरीर में पापी वासनायें नहीं हो सकतीं। अतः स्वस्थ पुरुष को उपवास की कुछ भी जरूरत नहीं है, परन्तु ऐसे स्वस्थ अर्थात् तन मन से निर्मल पुरुष संसार में कितने होंगे? बहुत कम। इसी कारण संसार दुःखमय मालूम होता है।

To be weak is a great sin; victory and happiness got to the strong; अर्थात् दुर्बल रहना यह एक महा-पाप है। सुख और यश बली ही को मिलते हैं। जिसकी आत्मा दुर्बल है, वही दुर्बल है। उपवास से आत्मा अत्यन्त ही निर्मल हो जाती है—मन और तन दोनों निरोग बन जाते हैं।

ऐसे दो मनुष्य लीजिये जिनकी पाचनशक्ति अति भोजन से बिगड़ी हो। एक मनुष्य चूरण पाचक खाकर, अवलेह चाटकर और दवा की गोलियां और भी पेट में भर कर पेट को दुरुस्त कर रहा है और दुसरा मनुष्य एक दो दिन भोजन न करके रोज प्रातः स्नान प्रातः सन्ध्या और रोज एक दो मील का चक्कर लगा के अपनी भूख को सुधार रहा है। अब कहिये, दोनों में कौन बुद्धिमान् है। महीनों दवा खाकर अपने शरीर को भाड़े का टट्टू बनाने वाला या उपवास और व्यायाम द्वारा अपने को दो ही दिन में चङ्गा करने वाला ?

उपवास से शारीरिक व मानसिक दोष जड़ से नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य की आत्मशक्ति बहुत कुछ बढ़ जाती है। अतः ब्रह्मचर्य के लिये उपवास अत्यन्त ही फायदेमन्द है, क्योंकि उससे संपूर्ण नीच इन्द्रियां फीकी पड़ जाती हैं और मन पवित्र बन जाता है। इसी पवित्र दृष्टि से हमारे ऋषियों ने प्रति मास में दो उपवास (एकादशियां) रक्खे हैं, जो कि लोक और परलोक दोनों के लिये परम उपयोगी हैं।

परन्तु उपवास तब ही उपकारी हो सकता हैं जब कि केवल जल को छोड़कर दूसरी कोई भी चीज़ मुख में न डाली जाय। अत्यन्त नाजुक प्रकृतिवाले दूध अथवा शुद्ध फल को खा सकते हैं। फलाहार का मतलब यह नहीं कि उस दिन खूब मिठाई और तरह तरह का माल उड़ावें और पहले से भी अधिक रोगी और कामी बन जावें। ये सब मूर्ख और अभागों के काम हैं, भाग्यवान के नहीं।

उपवास का सच्चा अर्थ यह है:—उप यानी नज़दीक और वास माने रहना, अर्थात उपवास में परमात्मा के नज़दीक रहना और आत्म-शक्ति को ईश्वरपूजन और सद्ग्रन्थों के श्रवण मनन द्वारा बढ़ाना; न कि ताश शतरंज, हँसी, मज़ाक, नाच, नाटक सिनेमा आदि व्यर्थ व अनर्थकारी कामों में अपनी आत्मा का पतन करना। यदि महीने में दो एकादशी के दिन निराहार रह कर कोई उपर्युक्त "सच्चा उपवास" करने लग जाय; तो वह बारह वर्ष में एक अच्छा महात्मा हो सकता है। इसे आप स्वयं अनुभव करके देख लीजिये।

"दृढ़-प्रतिज्ञा"

नियम सोलहवाँ:—

काया-वाचा-मनसा अपनी प्रतिज्ञा का पूर्ण पालन करना, यह एक परम श्रेष्ठ दैवी सद्गुण है; उससे मनुष्य में एक दैवी तेज प्रगट होता है व सम्पूर्ण लोग उस व्यक्ति का दृढ़ विश्वास करने लगते हैं। प्रतिज्ञा-भंग करने वाला पुरुष नीच, आत्मघाती व दग़ाबाज़ कहा जाता है; उस पर से लोगों की श्रद्धा उठ जाती है। "काम मर्दों का नहीं, काम अधूरा करना, जो बात ज़बाँ से निकले उसे पूरा करना"—यह श्रेष्ठ पुरुषों का लक्षण है। प्रतिज्ञा-पालन करने वाले मर्द पुरुष होते हैं और प्रतिज्ञा तोड़ने वाले पुरुष नामर्द कहलाते हैं। सत्य-प्रतिज्ञ पुरुष अपने प्राण को भी त्याग देते हैं; परन्तु अपने वचन को कदापि नहीं त्याग सकते व कलंकभूत नहीं हो सकते हैं। "सुकृत जाय जो प्रण परिहरऊँ।" अपने किये हुये प्रण को तोड़ने से संचित

पुण्य नष्ट हो जाता है।" प्राण जाय पर वचन न जाई"—यही महापुरुषों का लक्षण है और इसी में कीर्ति है, व कीर्ति ही जीवन है। सत्यप्रतिज्ञ पुरुष के सामने सभी लोग शीश झुकाते हैं।

प्रलोभनों से मुँह मोड़ना यद्यपि पहिले मरतबे सहज नहीं है तथापि वहां से तुरन्त हट जाने से अथवा उस भाव का ध्यान तथा चिन्तन करना ही छोड़ देने से और उसके बदले सुकर्म तथा शुभ चिन्तन में रत होने से मनुष्य उन प्रलोभनों से निःसन्देह बच सकता है। यदि एक ही मरतबे मनुष्य इस प्रकार मनोनिग्रह करके दिखलावेगा, तो उसमें प्रतिकार करने की एक अद्वितीय दैवी शक्ति जागृत होगी; जिससे कि वह दूसरे मरतबे उससे अपने मन को बड़ी आसानी से खींच सकेगा; तीसरे मरतबे और भी आसानी से और इसी प्रकार दिन दिन उसकी वह पुरुषार्थ-शक्ति बढ़ती ही जायगी। इस प्रकार दस-बारह मरतबे मनोनिग्रह करने से उसमें ऐसा कुछ ईश्वरीय बल प्राप्त होगा कि जिनके सामर्थ्य से वह जो कुछ ठान लेगा वही कर दिखलायेगा। फिर वह श्रीभीष्म पितामह, श्रीलक्ष्मणजी, श्रीजनकजी आदि महापुरुषों की तरह प्रलोभनपूर्ण परिस्थिति में रहते हुये भी अपने मन को विचलित नहीं होने देगा। अतः शुरू ही में अपनी शूरता दिखलाओ। बस पुरुषत्व एवं ईश्वरत्व प्राप्ति की सुवर्ण कुञ्जी है। बुराई से बचना यह भलाई की ओर जाना है, इस महत्व को हृदय में अखण्ड धारण किये रहो। कछुआ जैसे अपने अवयवों को अपनी ढाल के नीचे समेट लेता है उसी प्रकार अपनी इन्द्रियां भी बुरे कामों से खीच कर शुभकर्मों की ढाल के नीचे लानी चाहिए।

देखो इस प्रकार इन्द्रियनिग्रह करने से तुम्हें क्या ही परमानन्द प्राप्त होता है। विषयानन्द से सच्चे आनन्द का नाश होता है वह सर्वत्र दुःख ही दुःख उपजाता है। ब्रह्मचारी पुरुष के सामने विषयी पुरुष फीके पड़ जाते हैं; और वे सुख शान्ति प्राप्ति के लिये उन्हीं की शरण में दौड़े चले आते हैं। हम भी यदि वीर्य को धारण करेंगे तो उन्हीं के सदृश सच्चे आनन्दी, उत्साही और तेज-सम्पन्न महापुरुष बन सकते हैं। विषय सेवन से महापुरुष भी देखते ही देखते नीच पुरुष बन जाते हैं और विषय त्याग करने से नीच पुरुष भी निस्सन्देह महापुरुष बन जाते हैं। सारांश मनोनिग्रह ही पुण्य है व मनोदास्य ही पाप है। अतः जितना अधिक हम मनोनिग्रह करेंगे उतने अधिक श्रेष्ठ, भाग्यवान् और पुण्यवान हम निश्चय-पूर्वक बन सकते हैं। "मन के हारे हार है, मन के जीते जीत" जो अपने को—अपने मन को—जीत लेता है वही पुरुष संपूर्ण जगत् को जीत लेता है।

एक मरतबे के मनोनिग्रह से कहीं ऐसा न समझ बैठो कि "हम अब विषय पर हुकूमत चला सकते हैं।" नहीं तो यह ख्याल तुम्हें धूल में मिला देगा। तुम्हें रोज़ मनोनिग्रह करना होगा और अपने मन तथा इन्द्रियों को प्रत्येक प्रलोभन से हठपूर्वक कछुआ की तरह खींचना होगा। इसी में पुरुषार्थ है! इसी में कीर्ति है!! और इसी में ब्रह्मचर्य की रक्षा है!!! प्रतिज्ञा का स्मरण रक्खो। (इस ग्रन्थ का 'मन व इन्द्रियाँ, यह प्रकरण बार बार पढ़ो)।

"डायरी"

नियम सत्रहवाँ

"स्मरण-बही" अथवा Diary यह मनुष्य का सब से घनिष्ट मित्र है। उसके पास हम जो चाहें सो जी खोल के बोल सकते हैं। यदि आपको आत्म-सुधार करना हो तो रोज़ दिन भर के भले बुरे कार्यों का वर्णन डायरी में ज्यों का त्यों लिखा करो और सोते समय उस पर गम्भीर विचार किया करो, जिससे कि मनुष्य की श्रेष्ठता का तथा नीचता का परिचय भली भांति हो जाय और उसको अपने कर्मों के लिये हर्ष व पछतावा होकर वह श्रेष्ठ पुरुषों के समान बनने के लिये कटि-बद्ध हो जाय। प्रत्येक मास के अनन्तर दोष और गुण की सूची लिखा करोगे तो उसे अवलोकन करने में बहुत ही सुभीता तथा कल्याण होगा।

डायरी के लिखने से मनुष्य में सत्य का संचार होता है, आत्म-सुधार का दृढ़-संकल्प हठात् घुस जाता है, समय का आदर होने लगता है, नियमितता शरीर में भिन जाती है और आत्म-विश्वास के साथ ही साथ आत्मिक-बल भी बढ़ने लगता है।

"दूसरों के दोष देखने से मनुष्य दोषी बनता और अपने दोष देखने से वह पवित्र बन जाता है।" दूसरों के दोष देखने के बनिस्बत—जो कि पतन का मूल है—यदि मनुष्य अपने ही दोष देखा करेगा तो उद्धार इसी जन्म में हो सकता है। महा-पुरुष कहते हैं:—

> यथाहि निपुणः सम्यक् परदोषक्षणं प्रति।
> तथाचेन्निपुणः स्वेषु को न मुच्येत बन्धनात्॥

"जैसे यह पुरुष परदोषों के निरूपण करने में अति कुशल है तैसे ही यदि अपने दोषों के निरूपण करने में निपुण हो, तो ऐसा कौन पुरुष है जो संसार के कठोर बन्धनों से छूटकर मुक्त न हो जाय ?" दोषों के निरूपण करने का तात्पर्य यही है कि मनुष्य को उसकी नीचता का परिचय भली भाँति हो जाय, उसे "सच्चा पछतावा" उत्पन्न हो और महापुरुषों की तरह वह सदाचारी एवं श्रेष्ठ बन जाय। परमात्मा की जब बड़ी भारी कृपा होती है तब मनुष्य को अपने दोष दिखाई देते हैं और उसी क्षण उसकी उन्नति आरम्भ समझना चाहिये। बड़ों के पास अपने दोष कहने से और छोटों के पास ब्रह्मचर्य की महिमा वर्णन करने से भी दोषों से उत्कृष्ट शुद्धि होती है। महापुरुषों के और हमारे बर्ताव में क्या अन्तर है और कौन से दोष त्यागने से हम भी सदाचारी, ब्रह्मचारी और महापुरुष बन सकते हैं। यह हमें हमारी 'डायरी' बतला सकती है अतएव आत्मोद्धार के लिये "रोज़ डायरी का लिखना" अतीव उपकारी है।

"सततोद्योग"

नियम अठारहवाँ:—

सम्पूर्ण दुर्गुणों का तथा दुर्भाग्य का मूल कारण एक मात्र आलस्य है जो कि लोक और परलोक का प्रबल शत्रु है। बेकार स्त्री-पुरुष सदा विकारी व प्रमादी होते हैं और विकारी तथा प्रमादी स्त्री-पुरुषों का ब्रह्मचारी होना सर्वथा असम्भव है। नीच विचारों को दमन करने के लिये सुविचार एक श्रेष्ठतम उपाय है। सुविचार से भी "सुकर्मता" (न कि कुकर्मता) सर्व-श्रेष्ठ साधन है। "Constant occupation prevents temptation" सुकर्म में फँसे हुए मनुष्य के पास प्रलोभन नहीं आ सकता। आलस्य से मनुष्य के भीतर की संपूर्ण उच्च शक्तियाँ दब जाती हैं और शुभ कर्मों से—सततोद्योग से संपूर्ण दैवी शक्तियाँ एक एक करके प्रगट होने लगती हैं और इसी जन्म में मनुष्य के जीवन का प्रचण्ड विकास हो, उसकी कीर्ति-सुगन्ध चारों ओर फैल जाती है। निरुद्योगी अर्थात् आलसी पुरुष सप्त जन्म में भी ब्रह्मचारी नहीं रह सकता है। एक मात्र सततोद्योगी ही ब्रह्मचर्य धारण कर सकता है। आलसी पुरुष जीते जी ही मुर्दा बन जाता है, आलसी पुरुष सदा सर्वदा पापी बना रहता है, संक्षेपतः उद्योग ही जीवन है और आलस्य ही मरण है। उद्योग ही पुण्य है और आलस्य ही पाप है-नरक है। अतः जिन्हें पुण्यवान्, भाग्यवान्, कीर्तवान् और वीर्यवान महापुरुष बनना हो, उन्हें परमावश्यक है कि वे सदा, सर्वदा शुभ कर्मों में ही फँसे रहें। जब कभी कुकर्म की ओर मन जाय तब 'तत्काल', कोई अच्छी किताब पढ़ने अथवा

इस ग्रन्थ के ही नियमों को पढ़ने व कोई अच्छा काम करने व भगवान का ज़ोर से नाम स्मरण करने लगें अथवा कोई अच्छा भजन गाने लग जाँय। निस्सन्देह तुम्हारी नीच वासनायें दब जाँयगी और पवित्र वासनाओं का उदय होगा। किंवा उस स्थान से हट कर तत्काल सन्मित्रों में आकर बैठने से और कोई अच्छा विषय छेड़ देने से हमें पूर्ण विश्वास है कि तुम साफ बच जाओगे। अतः वीर्य-रक्षा के लिये प्रत्येक व्यक्ति को आलस्य पर लात मार सततोद्योगी अवश्य ही बनना होगा। क्योंकि आलसी पुरुष को कामदेव पटक पटक कर मारता है। यदि हम सतत शुद्ध उद्योगी न बनेंगे तो आलस्य ही हमें लात मार कर ज़मीन में मिला देगा, यह पूर्ण निश्चय जानो। ब्रह्मचारी को सदैव शुभ कर्मों में ही डूबे रहना चाहिये। हाथ पर हाथ रख कर निठल्ले में बैठने में कुछ विश्रान्ति नहीं है। सच्ची विश्रान्ति काम को बदल बदल कर करने में अर्थात् भिन्न भिन्न कार्य करने ही में है।

———

"स्वधर्मानुष्ठान"

नियम उन्नीसवाँ:—

"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥ गीता॥

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं "स्वधर्म में मृत्यु श्रेष्ठ परन्तु पर धर्म में जीना भयानक है—निन्दित है।" जो अपने धर्म में प्रीति नहीं कर सकता उसका दूसरे धर्म में प्रीति करना आडम्बर मात्र है, वह उसका व्यभिचार है। धर्म कोई भी हो परन्तु उसमें "दृढ़ विश्वास की परम आवश्यकता है।" श्रद्धा बगैर सभी धर्म-

कर्म वृथा हैं। दृढ़ विश्वास होने पर धर्मान्तर करने की कोई भी आवश्यकता नहीं है और दृढ़ विश्वास धर्मों के अज्ञान से नहीं होने पाता। अतः सब से प्रथम अपने धर्म ही का पूरा ज्ञान कर लो। स्वधर्म के अज्ञान से ही मनुष्य परधर्म को स्वीकार करता है, जो कि उसकी प्राकृतिक यानी स्वभाव धर्म के विरुद्ध होने के कारण महान् विनाशक है। यह नितान्त सत्य है कि प्रत्येक धर्म उसी एक परमात्मा के तरफ़ जाने का रास्ता है; तब फिर स्वधर्म का त्याग कर, पर धर्म के स्वीकार करने की गरज़ ही क्या है? वैसा करना घोर मूर्खता व अधःपतन है। सम्पूर्ण धर्मों का सार "चित्त की शुद्धि है"। चित्त की शुद्धि बिना सभी धर्म-कर्म अधर्म हैं। श्रद्धायुक्त स्वधर्माचरण से चित्त की शुद्धि अवश्य होती है। श्री मनु महाराज ने अपने हिन्दू धर्म के लक्षण यों बतलाये हैं।

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ॥श्रीमनुः॥

(१) धृति अर्थात धैर्य, (२) क्षमा अर्थात् दयालुता, (३) दम यानी मनोनिग्रह, कुविचारों का दमन, (४) अस्तेय अर्थात् चोरी न करना (५) शौच का अर्थ कायिक, मानसिक, सांसर्गिक, आर्थिक वगैरह सब प्रकार की पवित्रता, (६) इन्द्रियनिग्रह, (७) धी अर्थात सुबुद्धि, (८) विद्या यानी जिससे मोहान्धकार नष्ट हो, ऐसा ज्ञान (९) सत्य अर्थात् हँसी-दिल्लगी में भी झूठ न बोलना और (१०) अक्रोध यानी क्रोध का न करना अर्थात् शान्ति;—ये धर्म के दश लक्षण हैं।

यम-नियम अर्थात् मन तथा इन्द्रियनिग्रह करने वाला पुरुष ही केवल धार्मिक अर्थात सदाचारी तथा ब्रह्मचारी हो सकता है। ब्रह्मचर्य से और धर्म के इन दस लक्षणों से अत्यन्त ही निकट सम्बन्ध है। इन लक्षणों से रहित पुरुष कदापि ब्रह्मचारी हो ही नहीं सकता, धार्मिक पुरुष ही केवल सदाचारी तथा ब्रह्मचारी हो सकता है। सारांश धर्म ही आत्मोन्नति की जड़ है और इसी में ब्रह्मचर्य का सारा रहस्य है। जो धर्म की रक्षा करता है धर्म भी सब प्रकार से उसकी पूर्ण रक्षा करता है। अतः स्वधर्मनिष्ट बनो।

"नियमितता"

नियम बीसवाँ:--

प्रकृति स्वयम् नियम-बद्ध है। "कारण बिना कोई भी कार्य नहीं होता" बस इसी एक वाक्य में प्रकृति की प्रचण्ड नियम-बद्धता का परिचय मिल रहा है। नियमितता यही प्रकृति का स्वरूप है। और प्रकृति के अनुसार चलने ही में प्राणिमात्र का कल्याण है। अनियमित पुरुष सदा दुःखी बना रहता है। स्वास्थ्य नाश के जितने कारण हैं उन सब में "अनियमितता" यही प्रमुख कारण है। बहुतेरों के काम बड़े ऊट-पटांग हुआ करते हैं। उनके न सोने का कोई निश्चित समय होता है, न जागने का, न नहाने का, न खाने-पीने तथा पाखाने जाने का। खेल, तमाशे, नाटकों आदि में रात रात जागते हैं और इधर दिन भर सोया करते हैं--इस प्रकार अपने नेत्र, नीति, पैसा और स्वास्थ्य पर अपने हाथ कुल्हाड़ी मार लेते हैं। ऐसी बेपरवाही से स्वास्थ्य की तथा

ब्रह्मचर्य की आशा करना व्यर्थ है। सोने-जागने, पाखाने जाने, नहाने ईश्वर-पूजन, भजन करने, खाने-पीने, पढ़ने-पढ़ाने, घूमने तथा आराम करने आदि प्रत्येक कार्य का क्रम अर्थात नियम बाँध लेने पर तुम्हें बहुत जल्द मालूम होगा कि तुम्हारा शरीर भी घड़ी की सुई की चाल से चल रहा है और प्रत्येक कार्य यन्त्र के तुल्य सुखपूर्वक और उन्नतिप्रद हो रहा है। मन भी कर्तव्य-पालन से सुप्रसन्न व बलिष्ट हो रहा है; नियमितता से मूर्ख भी ज्ञानी, रोगी भी नीरोगी, दुर्बल भी प्रबल, अभागा भी भाग्यवान् और नीच भी उच्च बन जाता है। नियमितता से मनुष्य में मनुष्यत्व एवं ईश्वरत्व प्रगट होने लगता है। आज तक जितने महापुरुष हुये हैं वे सब नियम के पूरे पाबन्द हुए हैं। अनियमित पुरुष को हमने महापुरुष बना हुआ आज तक न देखा है न सुना ही है। स्वास्थ्य-सुधार के जितने नियम संसार में विद्यमान हैं उन सब में "नियमित समय पर काम करने का नियम"—सर्वश्रेष्ठ है। अनियमित पुरुष कदापि निरोगी तथा ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। अतएव आरोग्य तथा ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये नियमितता का पालन करना प्राणिमात्र का प्रथम तथा श्रेष्ठ कर्तव्य है। यह नितान्त सत्य है कि "जिसका कोई नियम नहीं है उसके जीवन का भी कोई नियम नहीं है।"

"लंगोट बन्द रहना"

नियम इक्कीसवाँ:—

वीर्यरक्षा के लिये सदा सर्वदा लंगोट कसे रहना बहुत ही उपकारी है। लंगोट से मन शान्त होता है व अण्डकोष बढ़ने नहीं पाते। लंगोट दोहरा नहीं बल्कि एकहरा ही होना चाहिये जिससे अनावश्यक गर्मी के कारण वीर्यनाश न हो। लंगोट पहनने से पुरुषत्व घटता नहीं, बल्कि अधिक शुद्ध व अत्यन्त नियम-बद्ध होता है---इस बात को लंगोट से डरने वालों को स्मरण रखना चाहिये, क्योंकि यह हमारा करीब २० वर्षों का अनुभव है।

'खड़ाऊँ'

नियम बाईसवाँ--

पैर के अँगूठे के पास जो बड़ी नस है उसका व जननेन्द्रिय का बड़ा ही भारी लगाव है। वह नस यदि टूट जाय तो मनुष्य एक ही घण्टे के भीतर मर जाता है खड़ाऊँ से जब वह नस दबती है तब उसके साथ साथ काम-वासनायें भी दबने लगती हैं। जूते की गन्दगी से तो ज़िन्दगी का नाश होता है, जो खड़ाऊँ से नहीं होने पाता। अक्सर सर्दी-गर्मी व रोगादि पैर व शिर इन द्वारों से ही प्रवेश करते हैं! जूते में कितनी बदबू भरी रहती है इसका अनुभव जूते के पहनने वालों को भली भाँति होता है। इसी कारण ब्रह्मचारी को जूता पहनना सर्वथा मना है। जूते के टुकड़े टुकड़े उड़ जाते हैं,

परन्तु प्रेमी मनुष्य उस बेचारे का पिण्ड नहीं छोड़ते। फिर रोग व कामरिपु भी ऐसे पुरुष का पिण्ड नहीं छोड़ते। यद्यपि बाहर से तेल-पानी और सज-धज के कारण ऐसा पुरुष वेश्या की तरह सुन्दर दिखाई देता हो, परन्तु उसका वह सौंदर्य गुप्त-रोग व पाप से भरा रहता है और इस बात की सत्यता थोड़ा सा निष्पक्ष आत्म-संशोधन करने से तत्काल मालूम होता है। अस्तु।

सभी जगह पवित्रता आवश्यक है, इसमें कोई संदेह नहीं। खड़ाऊँ से मनोविकार शान्त होते में, यह हमारा अनुभव है; तथा दृष्टि भी सतेज होती है। पर ऐसी रद्दी खड़ाऊँ न पहिनना चाहिये जिससे कष्ट हो। खड़ाऊँ हलका व सुखप्रद होना चाहिये। खड़ाऊँ का अच्छापन अथवा बुरापन उसकी खूँटी पर सर्वथा निर्भर है। अतः खूँटियों की घुण्डियां चौड़ी तथा सुखावह हों।

'पैदल चलना"

नियम तेईसवाँः—

ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिये पैदल चलना आवश्यक बात है। व्यर्थ थोड़ी थोड़ी बात के लिये व थोड़ी दूर के लिये बिना आवश्यकता के गाड़ी, घोड़े, एक्का, टाँगा; साइकिल इत्यादि पर चढ़ना निःसन्देह ब्रह्मचर्य से नीचे गिरना है। साइकिल पर बैठने से तो ब्रह्मचर्य तथा स्वास्थ्य को बहुत हानि होती है। कैसी ही दिशा मालुम होती हो परन्तु एक ही मील तक साइकिल पर बैठ के जाने से ही वह दब जाती है, अब कहो!

फिर स्वास्थ्य की आशा कहाँ ? साइकिल पर बैठने से जननेद्रिय की निचली नसों पर बड़ा कठोर दबाव पड़ता है जिससे मनुष्य का पुरुष-बल घटने लगता है। साइकिल पर बैठने वाले विशेष नामर्द एवं नपुँसक होते हैं।

आराम-तलब पुरुष सात जन्म में भी ब्रह्मचारी नहीं हो सकता। और इस बात का पता धनी लोगों पर दृष्टि ढालने से तत्काल लगता है। धनी पुरुष हमेशा बहुत दुःखी, बड़े लँगड़े और बहुत काम के कारण बेकाम बने हुये हैं। वे सदा सर्वदा रोगी ही बने रहते हैं। हे भगवान्! पैदल टहलने का महत्व इन लोगों के ध्यान में कब आवेगा और उनका तथा देश का उद्धार कब होगा ? हमें अब शीघ्र जागृत कीजिए, यही आप से हमारी नम्र प्रार्थना है!

"लोक निन्दा का भय"

नियम चौबीसवाँ:—

इस ग्रंथ में वर्णन किये हुये "वीर्य-नाश के कुछ मुख्य लक्षण" बार बार पढ़ो और शीशे में अपना मुँह जरा देखो। घमण्डी बनने के भाव से न देखो। यदि तुम्हारे नेत्र, नाक के कोने के पास काले होने लगे हों तो उन्हें वीर्य के नाश से और भी काले मत बनाओ और फिर अपना काला मुँह लेकर अकड़ कर समाज में न घूमोः बुद्धिमान पुरुष तुम्हें देखते ही पहचान लेंगे कि तुम कितने बरबाद हुए हो; भला अब इस ग्रन्थ को पढ़ने वाले पुरुष से तुम छिप सकोगे ? क्या साबुन से वह नेत्र के

काले धब्बे निकल सकेंगे ? कदापि नहीं ! सभ्य स्त्री-पुरुष या बालक को अपनी ऐसी पतित दशा देख कर—अपना काला मुँह देखकर निःसन्देह बड़ा ही दुख होगा—उन्हें कृत कर्मों का पछतावा होगा। प्रिय मित्रो ! तुम्हें यदि सच्चा पछतावा होता हो तो हम आपको इसकी अत्यन्त सुलभ औषधि बतलाते हैं कि "वीर्य-रक्षा करो" बस, यही इसकी सुलभ व अनुभव-सिद्ध औषधि है। जितना अधिक तुम वीर्य धारण करोगे उतना ही अधिक तुम्हारा मुँह उज्वल बनता जायगा। आँखों की वह कालिमा नष्ट होती जायगी और जितना अधिक तुम वीर्य-नाश करोगे उतना ही अधिक तुम्हारा मुँह काला बनता जायगा। यदि तुम छः ही मास वीर्य-संग्रह करोगे तो तुम्हारे तन, मन दोनों पवित्र बन जायेंगे और चेहरा स्वच्छ बन जायगा, पर्ण विश्वास रक्खो। जब से तुम वीर्य धारण करने लगो तब से ऐसी 'दृढ़ भावना रक्खो कि—"हमारे नेत्र स्वच्छ हो रहे हैं।"

(नेत्र पर से हाथ घुमा कर कहो कि—) अब कालिमा नष्ट हो रही है। सूर्य के माफिक मेरे नेत्र तेज सम्पन्न हो रहे हैं। मेरी दृष्टि पवित्र हो रही है—पाप दृष्टि नष्ट हो रही है। मैं निष्पाप हूँ ! पवित्र हूँ !! तेजस्वी हूँ !!! इत्यादि तुम इस ग्रंथ के दिव्य नियमानुसार चलने से वीर्य रक्षा प्रतिज्ञापूर्वक कर सकते हो, ऐसा हमारा अत्यन्त दृढ़ अनुभव है। प्राणायाम से दृष्टि अत्यन्त तीव्र होती है। हाँ, कीर्ति की तथा आत्मोद्धार की सच्ची इच्छा जरूर होनी चाहिए। लोकनिन्दा का भय वीर्य-नाश कारिणी कुवृत्तियों को रोकने के लिये अति उत्तम उपाय है—ऐसा सज्जनों का अनुभव है।

———

"ईश्वर-भक्ति"

नियम पच्चीसवाँ:—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥१॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥२॥

—गीता अ० ९ श्लो ३०-३१।

अर्थः—"कितने ही दुराचारी क्यों न हों; परन्तु यदि वह मुझे 'एक निष्ट भाव से' भजता है तो उसे साधु ही समझना चाहिये; क्योंकि उसकी बुद्धि का निश्चय अच्छा हुआ है। वह बहुत शीघ्र धर्मात्मा होता है व चिर-शान्ति को प्राप्त होता है। हे कौन्तेय ! तू पूर्ण ध्यान में रख कि "मेरे भक्त की कभी अधोगति हो ही नहीं सकती।"

संतप्त मन को शान्त करने के लिये और अपवित्र मन को पवित्र व सर्वश्रेष्ठ बनाने के लिये "भगवद्भक्ति" एक मात्र सबसे श्रेष्ठ, सुलभ व सच्चा उपाय है। अन्य उपाय कष्टप्रद हैं । अतएव आत्म-शुद्ध्यर्थ भगवान का स्मरण, ध्यान, गान, आदि आपको रोज़ अवश्य ही करना होगा। जैसी हमारी भक्ति होगी वैसी ही हम में विरक्त भी प्रगट होगी । "हरि व्यापक सर्वत्र समाना, प्रेम ते प्रकट होंहिं मैं जाना।" श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः*स एव सः ।" यानी मनुष्य श्रद्धामय है; जैसी उसकी श्रद्धा होती

*भक्तियोगेनमन्निष्ठोंमद्भावायोपपद्यते । भगवान श्रीकृष्ण ।

है ठीक वैसा ही बन जाता है" ऐसा भगवान का भी वचन है। क्रोधी भाव से क्रोधी, कामी भाव से कामी, अभिमानी भावसे अभिमानी, व्यभिचारी भाव से व्यभिचारी, प्रेमी भाव से प्रेमी, ब्रह्मचारी भाव से ब्रह्मचारी व ईश्वरी भाव से मनुष्य भी निस्सन्देह ईश्वररूप बन जाता है। वास्तव में मन जिसका ध्यान करता है, वह तद्रूप ही बन जाता है। दोष वर्णन से मनुष्य जैसा दोषी बन जाता है, वैसे ही सद्गुण वर्णन से मनुष्य भी निस्सन्देह सद्गुणी बन जाता है। तब फिर भगवान् के गुण वर्णन करने से और उसी का नियम पूर्वक ध्यान करने से हम प्रत्यक्ष भगवद्रूप ही क्यों न बन जाँयगे ? अवश्य बन जाँयगे। यदि हम हनुमान जी का ध्यान और गुणगान करेंगे तो हम भी उन्हीं के समान भक्त व ब्रह्मचारी अवश्य बन जाँयगे। अतएव ब्रह्मचारी को चित्त-शुद्धि के लिये रोज़ नियम पूर्वक सुबह शाम दोनों वक्त भगवद्भजन, पूजन, स्मरण, ध्यान आदि अवश्यावश्य करना ही चाहिये, क्योंकि भगवान कहते हैं "मेरी भक्ति करने वाले मेरे ही स्वरूप में आकर मिलते हैं और स्त्री भक्ति करने वाले स्त्री रूप में व शूकर कूकर के रूप में जा मिलते हैं।" "विषय विरक्त, बस, इसी एक शब्द में संम्पूर्ण ब्रह्मचर्य का सार भरा हुआ है जो कि "भगवद्भक्ति' हर किसी को सहज ही में "निस्सन्देह" प्राप्त होती है। आत्मोद्धार चाहने वालों को अवश्य अनुभव करना चाहिये।

भोजन के प्रत्येक कौर से जैसे भूक की शांति व शरीर की पुष्टि तथा कान्ति बढ़ती है, वैसे ही ज्यों ज्यों भक्ति का सेवन किया जाता है, त्यों त्यों विरक्त व मुक्ति भी मनुष्य को निस्सन्देह प्राप्त होती रहती है।

संक्षेप में कहा जाय तो विषय-वैराग्य ही भाग्य है और वही शान्ति का मूल है। आचार्य कहते हैं:—दुखी सदा कः ?" सदा दुखी व अभागा कौन है? "विषयानुरागी" जो विषयासक्त है सो! शान्ति शान्तिमाप्नोति न काम कामी" भगवान कहते हैं:—'कामी पुरुष कदापि शान्त नहीं हो सकता," विषय वासना ही संपूर्ण दुखों की जड़ है और विषय-वैराग्य ही सम्पूर्ण सुखों की एक मात्र कुञ्जी है और यह विषय-वैराग्य किंवा विषय-विरक्ति भगवान की भक्ति से हमें निस्सन्देह प्राप्त होती है, ऐसा असंख्य महापुरुषों का तथा श्रीतुलसीदास जी जैसे कट्टर महाभक्त का स्वानुभाविक सिद्धान्त है—"प्रेम भक्ति जल-बिनु खग राई, अभ्यन्तर मल कबहुँ न जाई।" अहह! बहुत ही सत्य है।

सत्य वचन अरु नम्रता, परतिय मात समान।
इतने पर हरि ना मिलें, तुलसीदास जमान॥ १॥

अतः यदि हमें अपना उद्धार करना हो, अपने मन को दुरुस्त करना हो, परम, शुद्ध व परम श्रेष्ठ बनना हो, "रोज नित्य नियम पूर्वक" परम कृपालु परमात्मा का भजन, पूजन हमें अवश्य ही करना चाहिये। भगवद्भक्ति ही सब दुखों से मुक्ति पाने का तथा चित्त शुद्धि का सर्वश्रेष्ठ उपाय है और चित्त-शुद्धि ही ब्रह्मचर्य का सच्चा रहस्य है।

१९-नित्य नियमावली का पाठ

रोज प्रातः इस ब्रह्मचर्य नियमावली का अवलोकन व पठन करना कभी न भूलना चाहिये, क्योंकि इस में ब्रह्मचर्य के रक्षा का सार है—इसी में चेतावनी है, इसी में ब्रह्मचर्य संस्कार हैं। नियमावली को एक वार "प्रातःकाल में रोज देखो।" वहुत उपकार होगा। हम विश्वास दिलाते हैं कि यह आपका "नियम दर्शन वा पठन कभी निष्फल नहीं होगा," तुम्हें यह अवश्य वलपूर्वक सन्मार्ग-पथ पर घसीट कर ले आवेगा। इतना ही नहीं वल्कि यदि कोई इस नियमावली का सतत एक वर्ष तक पाठ शुरू रक्खेगा तो उसमें क्या ही ऊंचे भाव पैदा होंगे इसका खुद उसी को अनुभव हो जायेगा, हाथ कंगन को आरसी क्या ? हम प्रतिज्ञा-पूर्वक कह सकते हैं कि यह पचीस नियम व "ब्रह्मचर्य-नियम पचीसा" मुर्दे को भी चैतन्यमयी वना सकता है! वस! इससे अधिक क्या कहें! स्वयं अनुभव कीजिये! ॐ! इति!

२०—सम्पूर्ण सुधारों का दादा ब्रह्मचर्य

आजकल देश भर में शूरों की सेना बढ़ रही है। जिसे देखो वही व्याख्यानदाता और देश सुधारक वनता फिरता है। इधर-उधर मण्डूकमण्डली से टर्र टर्र कोलाहल सुनाई दे रहा है। कागजी घोड़ोंकी खुरों की खनखनाहट ज़ोर शोर से कानोंमें घुस रही है।

ऐसा मालूम होता है मानों अब कोई बड़ा भारी कर्मवीर हमारी सहायता करने के लिये आ ही रहा है! परन्तु हैं क्या "कुछ नहीं!" कोई देशभक्ति के बहाने, कोई देशकार्य के बहाने, कोई समाज-स्थापन के बहाने, अपना अपना स्वार्थसाधन कर रहे हैं। कोई ऐसे उदार पुरुष हैं, कि बिना पैसे लिये व्याख्यान ही नहीं देते? भला ऐसे देशभक्तिशून्य वाक्शूर पण्डितों से देश का क्या सुधार हो सकता है। हमें ऐसे प्रत्यक्ष निःस्वार्थी कर्मवीरों की बड़ी भारी आवश्यकता है, जिनके केवल मुख ही नहीं बल्कि सम्पूर्णशरीर ही हमारे सच्चे कर्तव्य की हमें सच्ची शिक्षा दे सकते हैं। एक आदर्श पुरुष देश का जितना सुधार कर सकता है, उस सुधार का एक सहस्रांश भी सुधार हजारों निर्वीर्य वाक्शूर पण्डित अपने आयु भर के कोरे व्याख्यानों से नहीं कर सकते। व्याख्यानबाजों से कोई कदाचित समझता हो कि भारत अब जाग उठा है, तो यह उनकी गलती है। भारत जैसा पहले था वैसा ही आज भी है; हिन्दुस्तान पहले की तरह आज भी ठण्डा ही है, विशेष फरक हुआ है सो यही कि वह पहले से आज अधिक गड़बड़ करने लगा! भारत में प्रत्यक्ष निःस्वार्थी कर्मवीर बहुत ही कम दिखाई देते हैं, स्वयं दुराचारी अत्याचारी व दम्भी होने पर भी अपने को सदाचारी और ब्रह्मचारी समझना तथा लोगों के नेता होने का दम भरना, इससे सुधार तो नहीं बल्कि भारत का बिगाड़ ही अधिक हुआ है और होगा। बगैर नीतिबल के—चारित्र्यबल के—कोई पुरुष कदापि श्रेष्ठ व यशस्वी हो ही नहीं सकता, यह अटल सिद्धान्त है। और नीतिबल, चारित्र्यबल किंवा आत्मबल बिना ब्रह्मचर्य के धारण किये सप्तजन्म में भी प्राप्त नहीं हो सकता, यह भी उतना ही सत्य सिद्धान्त है! अपने

को नेता समझने वाले बड़े बड़े लोग आज दो चार ही नहीं बल्कि सैकड़ों सुधारों के पीछे पड़े हैं। क्या सामाजिक, क्या धार्मिक, क्या व्यवहारिक, कोई भी सुधार क्यों न हो, परन्तु बिना इस एक विषय में अर्थात् ब्रह्मचर्य में सुधार किये, कोई भी सुधार कदापि चिरस्थायी व यशस्वी हो नहीं सकता, यह सिद्धान्त वाक्य हमें हृदय-पट में अङ्कित कर व अपनी दृष्टि के सामने बड़े बड़े अक्षरों में टंगवा कर रखना चाहिये और रोज उसका दर्शन करना चाहिये। क्षणिक सुधार किस काम का ? पानी पर लकीरें खींचने से क्या मतलब व जड़ को छोड़कर डाल और पत्तियों पर पानी छिड़कने से क्या लाभ ? यह नितान्त सत्य है कि सम्पूर्ण सुधारों की और यश की कुञ्जी एक मात्र ब्रह्मचर्य ही है। बिना वीर्यधारण किये कोई भी जाति की कदापि उन्नति नहीं हो सकती। निर्वीर्य जाति दूसरों की सदा गुलाम ही बनी रहती है। यदि हमें गुलामी की जड़ मूल हटाना हो, हमें स्वतंत्र; सुखी, शक्तिशाली और वैभवसम्पन्न बनना हो और पहले की तरह पुनः श्रेष्ठ बनना हो तो हमें पहले के समान पुनः वीर्यसम्पन्न अवश्य ही बनना होगा ! बिना ब्रह्मचर्य धारण किये हम कदापि पूर्व वैभव प्राप्त नहीं कर सकते। ब्रह्मचर्य ही सम्पूर्ण उन्नति का बीज मन्त्र है ! ब्रह्मचर्य ही सम्पूर्ण सुखों का निधान है। ब्रह्मचर्य ही एक मात्र सम्पूर्ण सुधारों का दादा है !!!